CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

3.2

आम्नाय—ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंची

कल्याण

...ालय
...वाराणसी-५
...1/35

५०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

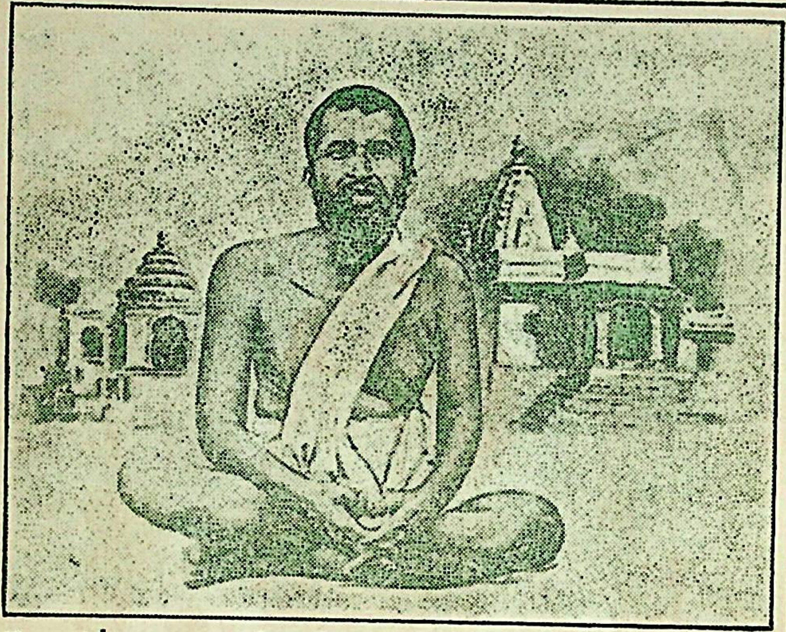

"...give me thy inner beauty, Mother–the purity of the spirit!"

Walking across a field, six-year old Gadadhar Chattopadhyaya beheld a vision of exquisite beauty: a flight of snow-white cranes traced against a great black cloud. He went into ecstasy and fell unconscious.
From then on this highly sensitive child went through a series of spiritual experiences, studied deeply the holy books of all faiths and was initiated into the true Vedic "dharma" by sage Totapuri who also named him Ramakrishna Paramahamsa. Ramakrishna was love incarnate: he loved the world, the universe—everyone of God's creatures.
Saints like Ramakrishna Paramahamsa are gifted with universal love and compassion.
To them, even inanimate objects become alive with God! They serve God through His creation—a service born of the conviction that the entire Universe is filled with God!
Sainthood is a universal phenomenon.

MAFATLAL GROUP

AIYARS.M.473

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

- प्राचीन-अर्वाचीन ज्ञान-विज्ञानकी प्रतिनिधि
- पुरुषार्थ-प्रतिपादक
- प्रसन्न-गम्भीर

आम्नाय-ग्रन्थालय
परमनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

चिन्तामणि

वर्ष १३ : अङ्क २
वार्षिक मूल्य : आठ रुपये मात्र
एक प्रति : दो रुपया पचास पैसा

संस्थापक: अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी महाराज

सम्पादक
विश्वम्भरनाथ द्विवेदी

व्यवस्थापक
सत्साहित्य-प्रकाशन ट्रस्ट
'विपुल', २८/१६, बी० जी० खेर मार्ग
बम्बई–४००००६
वर्ष १३ : अङ्क २

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

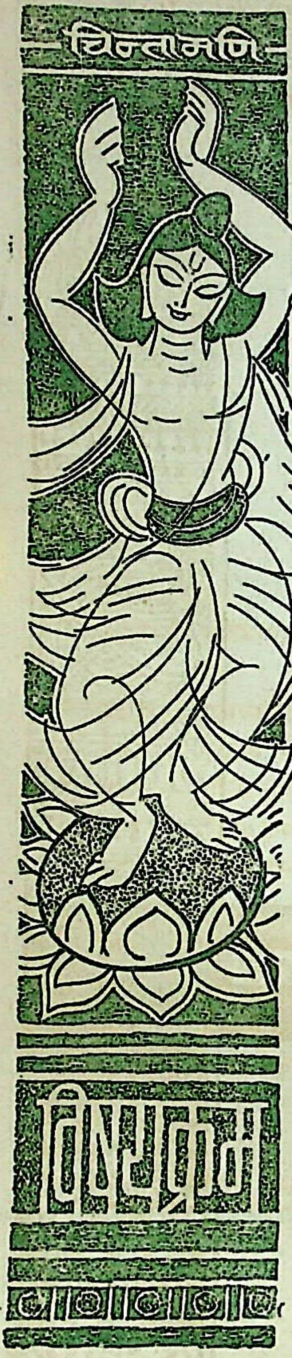

स्वस्त्ययन १२१

भक्तिः मुक्ति-शताधिका—२

अनन्तश्री स्वामी करपात्रीजी महाराज १२२

छान्दोग्य : एक दृष्टि—३

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी १३२

प्रजातन्त्रमें सत्याग्रहकी उपयोगिता

श्री छोटेलाल त्रिपाठी १४६

उरहार श्री भानुदत्त शास्त्री 'मधुरेश' १४९

आत्मोल्लास: ४ श्री 'विष्णु' १५०

अहं ब्रह्माऽस्मि

श्री बालकृष्ण गर्ग १५४

वाल्मीकि रामायण : शरणागति

डा. वि. कृष्णस्वामी अय्यंगार १५५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

आश्रय-निष्ठा — अनन्त श्री स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती — १७०

सूर और नायकी स्वामीकी मधुर भक्ति — डॉ. के आर. विट्ठलदास — १७३

ब्रह्माण्ड : एक भ्रम मात्र — फरहत कमर — १८२

गीता–दर्शन — श्रीमती सतीशबाला महेन्द्र जेठी — १८५

दिलके दौरे — डा. लक्ष्मीनारायण शर्मा — १९४

जीवन अमृत है — स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती — १९८

मानसिक प्रवृत्तियां और हमारा स्वास्थ्य — श्री रामकुमार भुवालका — २०१

कृष्ण-कृष्ण ! — महाराज श्री — २०६

स्वभावका परिवर्तन — स्वामी श्री शंकरानन्दजी — २०७

श्रीकृष्ण-सौन्दर्यकी प्यासी गोपियां — सुश्री कन्चन खन्ना — २१०

English

Bhakti Yoga — Jasvanti Dave — 212

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्साहित्य प्रकाशन (पब्लिकेशन) ट्रस्ट

'विपुल' २८/१६, बो० जी० खेर मार्ग, मलाबार हिल, बम्बई—४०००0६
फोन : ८१७९७६

पूज्यपाद अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज द्वारा विरचित एवं संस्था द्वारा प्रकाशित अनुपम आध्यात्मिक साहित्य

१. माण्डूक्य-प्रवचन (आगम प्रकरण)	१०.००
२. माण्डूक्य-प्रवचन (अद्वैत प्रकरण)	४.५०
३. अपरोक्षानुभूति-प्रवचन	६.००
४. कठोपनिषद्-प्रवचन—१	९.००
५. कठोपनिषद्-प्रवचन—२	१२.००
६. मुण्डकसुधा	३.७५
७. ईशावास्य-प्रवचन	४.००
८. ब्रह्मसूत्र-प्रवचन-१	१०.००
९. ब्रह्मसूत्र-प्रवचन-२	१०.००
१०. ब्रह्मसूत्र-प्रवचन-३	१०.००
११. विवेक कीजिये—१	५.५०
१२. विवेक कीजिये—२	९ ००
१३. सांख्ययोग (दूसरा अध्याय)	९.७५
१४. कर्मयोग (तीसरा अध्याय)	६.००
१५. ध्यानयोग (छठाँ अध्याय)	६.००
१६. ज्ञान-विज्ञान-योग(अ. ७)	६.००
१७. विभूतियोग (दसवाँ अ०)	५.२५
१८. गीता-दर्शन—१	५.५०
१९. गीता-दर्शन—२	५.००
२०. नारद भक्ति-दर्शन	९.००
२१. गोपियोंके पाँच प्रेम-गीत	०.४०
२२. भागवत विचार-दोहन	३.००
२३. भक्ति-सर्वस्व (द्वि० सं०)	
२४. मोहन नो मोहिनी (गुज०)	०.६०
२५. श्रीमद्भागवत-रहस्य	३.७५
२६. कपिलोपदेश	३.७५
२७. व्यवहार और परमार्थ	३.७५
२८. मानव-जीवन और भागवत-धर्म	४.५०
२९. वेणुगीत	३.००
३०. श्री भक्तिरसायनम्	१२.०
३१. श्री भक्तिरसायन-प्रपा	३.००
३२. च० नि० आणि ब्रह्मज्ञान (मराठी)	१.५०
३३. महाराजश्रीका एक परिचय (गुजराती)	१.९०
३४. महाराजश्रीका एक परिचय	१.००
३५. आनन्दवाणी, भाग—५ (गुजराती)	२.२५
३६. ज्ञान-निर्झर	०.९०
३७. आत्मबोध	३.००
३८. राम-शताब्दी-स्मृति	२०.००
३९. श्री अखण्डानन्द स्तव	१.००
४०. महाराजश्री चित्रावली	११.००
४१. Glimpses of Life Divine	1.50
४२. Ideal and Truth	5.25

प्राचीन-अर्वाचीन, ज्ञान-विज्ञानकी प्रतिनिधी पुरुषार्थ-प्रतिपादक प्रसन्न-गम्भीर त्रैमासिक पत्रिका 'चिन्तामणि' वार्षिक शुल्क रु० ८.०० : एक प्रति रु० २ ५०

पाठकोंकी सुविधाके लिए ट्रस्ट की भिन्न-भिन्न सदस्यता—श्रेणियाँ हैं, जिनके अन्तर्गत पूरा साहित्य भेंट स्वरूप एवं कमीशन पर दिया जाता है। कृपया अधिक जानकारी के लिए कार्यालय से सम्पर्क कीजिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फरवरी' ७६
१३–२

चिन्तामणि

स्वस्त्ययन

ॐ शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम् ।
शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ॥

अथर्ववेद–का० १९, अनु० १, सूक्त ९

द्युलोक शान्त हो। पृथिवी शान्त हो। यह दृश्यमान विस्तीर्ण अन्तरिक्ष शान्त हो। यह समुद्रका जल शान्त हो। और ये ओषधियाँ हमारे लिए शान्त हों।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्तिः मुक्ति-शताधिका

। २ ।

अनन्तश्रीविभूषित स्वामी करपात्रीजी महाराज

रतिमें भी भेद होता है— मृदुरति, मध्यरति, अधिमात्ररति। प्रकाशमें भी भेद होता है— वैकुण्ठ, द्वारका, मथुरा वृन्दावन आदिके भेदसे अथवा व्रज, वन, निकुञ्ज आदिके भेदसे। और भी भेद होते हैं शुद्ध मिश्र आदि। भक्तिरसामृतसिन्धु, उज्ज्वल नीलमणि आदिमें जिन विषयोंका विस्तारसे वर्णन है उनका यहाँ सूत्ररूप कारिकाओंसे निर्देश किया गया है। विशेषतः वेदान्त, सांख्य, मीमांसा आदि शास्त्र और उनके अविरुद्ध युक्तियोंके द्वारा सभी विषयोंका उपपादान किया गया है।

अद्वैतसिद्धिका अर्थ श्रीमधुसूदन सरस्वतीके भी सिद्धान्तसे अविरुद्ध स्वारसिक भक्ति थी। उन्होंने गीताकी व्याख्या गूढ़ार्थ-दीपिकाके प्रारम्भमें कहा है कि जैसे ज्ञानी पुरुषका स्वभाव है अद्वेष आदि वैसे ही उनका भगवद्भजन भी स्वभाव ही है। श्रीमधुसूदन सरस्वतीजी महाराज साधनाभ्यासके परिपाकसे शरणागतिरूप भक्तिकी त्रिविधता भी स्वीकार करते हैं। एक—मैं प्रभुका ही हूँ। दो प्रभु मेरे ही हैं। तीन वही मैं हूँ। यह कहना ठीक नहीं है कि भक्तोंमें तीसरा-परिपाक देखनेमें नहीं आता क्योंकि रासलीलान्तर्गत अन्तर्धानके प्रसंगमें गोपी कहती हैं: मैं कृष्ण हूँ। देखो मेरे पाँवकी थिरकन। शुकदेवजी कहते हैं परीक्षित; तुम समीक्षण करो कि मैं ही परब्रह्म हूँ। जयदेवजी राधाका वर्णन करते हैं कि वह विरहमें 'मैं ही कृष्ण हूँ' इस भावमें तन्मय हो जाती हैं। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें जो कहा है कि एकमात्र मेरी शरणमें आ जाओ, उसका भी तीसरे भावमें ही तात्पर्य है। 'माम्'का अर्थ है प्रत्यक् चैतन्याभिन्न परमात्मा, एक-का अर्थ है अद्वितीय त्रिविध भेद शून्य, शरणका अर्थ है आश्रय अथवा रक्षक। अमरकोशमें शरण शब्दके दो अर्थ दिये हैं गृह तथा रक्षक, शरण गृह आश्रय सर्वाधिष्ठान जैसे घटाकाशका महाकाश। वे ही रक्षक भी हैं जैसे तरङ्गका रक्षक जलराशि। श्रुतिका कहना है कि अज्ञात देवता भक्तकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रक्षा नहीं करता। जब प्रत्यगात्मासे अभिन्न परमात्माका ज्ञान होता है, आवरणभङ्ग हो जाता है तब अविद्या और उसके कार्यप्रपञ्चकी निवृत्तिके द्वारा वह रक्षा करता है। व्रजका अर्थ है जानो, निश्चय करो, व्रज धातु गत्यर्थक है।

वास्तविक तो यह है कि प्रत्यगात्मा परमात्मासे अभिन्न होकर ही पूर्ण होता है और परमात्मा प्रत्यगात्मासे अभिन्न होकर ही अपरोक्ष होता है। इस अभेद बोधके बिना प्रत्यगात्मा परिच्छिन्न और परमात्मा परोक्ष एवं कल्पित ही रहेगा। जबतक पूर्णता और अपरोक्षता नहीं होगी तबतक उपाधिरहित निरतिशय परमप्रेमास्पदता भी सिद्ध नहीं होगी। तटस्थ परमप्रेमास्पद नहीं होता। श्रुति स्पष्ट कहती है कि अपने लिए ही सब कुछ प्रिय होता है। आत्माके लिए होनेपर ही, आत्माका शेष होनेपर ही अन्य प्रेमास्पद होता है। जैसे रोग दूर करनेके लिए घुंघुचीका रस प्रेमास्पद होता है, ऐसे ही यदि हम आत्मकल्याणके लिए ही भगवान्‌से प्रेम करते हैं तो वह भी सोपाधि सावधि प्रेमास्पद हो जायेंगे फिर तो भगवद्भजन भी घूंघुचीपानके समान हो जायगा। और वैसे ही प्रेमास्पदता भी सीमित हो जायगी। क्योंकि भगवान्‌से अधिक प्रेम तो अपने आपसे हो जायेगा। इसलिए जब प्रत्यगात्मा और परमात्माके अभेदका बोध हो जाता है तब वह प्रेम किसी दूसरे मोक्ताके लिए दूसरी वस्तुसे प्रेमके समान नहीं रहता। ऐसी स्थितिमें न कोई उपाधि रहती है और न उससे अधिक कोई प्रेमका विषय रहता है। अभेदसिद्धान्तमें ही ऐसे परमप्रेमास्पदत्वकी उपपत्ति होती है।

द्वा-सुपर्णा यह श्रुति भी आत्मा परमात्माके भेदमें तात्पर्य नहीं रखती। उसका अभिप्राय यह है कि यदि मान लिया जाये कि परमात्मा अत्यन्त दुर्लभ है तो प्रेमकी गाढ़ता होनेमें बाधा पड़ेगी। भक्तिमें अत्यन्त उत्कण्ठा होना अपेक्षित है। परमात्माकी सुलभताकी सम्भावनासे उत्कण्ठा बढ़ती है। उसी उत्कण्ठाकी उत्पत्तिके लिए श्रुति विशेष सम्बन्धोंका बोध कराकर शान्त हो जाती है। जीव और ईश्वर दोनों सुपर्ण अर्थात् पक्षी हैं। इससे सजातीय होना सिद्ध होता है। 'सखाया' कहनेका अर्थ है कि दोनोंमें सख्य है। समान वृक्षका अभिप्राय है कि एक देशमें रहते हैं। 'सयुजा' के माने हैं सायुज्य अर्थात् तादात्म्य।

श्रुतिने ब्रह्मको साक्षात् अपरोक्ष कहा है। यहाँ अवेद्यरूपसे ही अपरोक्षता कही गयी है। वह घटपट आदिके समान वेद्य नहीं है और स्वर्गादिके समान परोक्ष नहीं है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतएव स्वप्रकाश आत्मा ही है। यदि ब्रह्म प्रत्यगात्मासे पृथक् कोई तटस्थ वस्तु हो तो श्रुतिवचन कथमपि उपपन्न नहीं होगा। क्योंकि जो वस्तु आत्मासे भिन्न होती है उसकी सिद्धि प्रमाणके अधीन होती है। स्वप्रकाश होनेके कारण जो स्वतः नितान्त भासमान वस्तु होती है उसीमें स्वारसिक एवं निरतिशय प्रेम होता है। अतः श्रीशुकदेवने श्रीकृष्णको आत्मा ही कहा है। देखिये ब्रह्माके मोह प्रसङ्गमें परीक्षितके प्रश्नका उत्तर। [1]"परीक्षित ! तुम इन पुनः पुनः प्रतिपाद्यमान श्रीकृष्णको सम्पूर्ण जीवोंके आत्माके रूपमें जानो। वे जगत्के हितके लिए मायासे देहीके समान प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि ब्रह्मज्ञानियोंके हृदयमें भी बलात् उसका स्फुरण होता है।

मैं अभी तैयार ही हो रहा था कि निखिल जगत्में स्फुरित होते हुए निरञ्जन, अजन्मा, पुराण-पुरुषका सञ्चिन्तन करूँ, आश्चर्य है, आश्चर्य है, तबतक मैं क्या देखता हूँ कि मेरे हृदयके अन्तर्तम प्रदेशमें कोई अञ्जन-पुञ्जमञ्जु साँवरा सलोना गोपशिशु बलात् स्फुरित हो रहा है। उसकी जगमग-जगमग झिलमिल-झिलमिल झाँकी दीख रही है।[2]

क्रम-क्रमसे मेरे अविद्या अस्मिता आदि रूप पाँच प्रकारके क्लेश क्षीण हो गये। स्वयं परमब्रह्म सुखका स्फुरण होने लगा, परन्तु यह क्या, उसको व्यर्थ बनाकर यह मनुष्याकृति मूर्त परमानन्द श्याम मेरी आँखोंके सामने प्रकाशित हो रहा है।[3]

वर्षाकालीन नवीन श्याममेघके समान आभा है, करकमलमें वंशी शोभायमान है, पीताम्बर फहरा रहा है, बिम्बाफलके समान रक्त-रक्त अधरोष्ठ हैं, पूर्णचन्द्रके समान सुन्दर मुख है, अरविन्दके समान नेत्र हैं। अच्छा, तो यह कृष्ण हैं। मैं इनसे परे और कोई तत्त्व नहीं जानता।[4]

---

१. कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया॥

२. यावन्निरञ्जनमजं पुरुषं जरन्तं सञ्चिन्तयामि सकलेजगति स्फुरन्तम्।
तावद् बलात् स्फुरति हन्त हृदन्तरे मे गोपस्य
कोऽपि शिशुरञ्जनपुञ्जमञ्जु॥

३. क्लेशे क्रमात्पञ्चविधेक्षयं गते यद्ब्रह्मसौख्यं स्वयमस्फुरत्परम्।
तद् व्यर्थयन् कः पुरतो नराकृतिः श्यामोऽयमामोदभरः प्रकाशते॥

४. वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात् पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरे तो सर्वस्व यही हैं।

यदि योगीगण ध्यानाभ्यासके द्वारा अपने मनको वशमें करके उससे वेदान्तसिद्ध-प्रसिद्ध, निर्गुण निष्क्रिय किसी अनिर्वचनीय परमज्योतिका साक्षात्कार करते हैं तो वे करते रहें उनका वह साक्षात्कार उन्हें मुबारक हो, हमारे लिए तो चिरकाल तक वही अनिर्वचनीय ज्योति लोचनोंको चमत्कृत करती रहे जो कालिन्दीके तिल-तन्दुलायमान कोमल-कोमल बालुकामय पुलिनों पर इधर-उधर दौड़ती रहती है।[1]

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अद्वैतपथके पथिक हमारी उपासना किया करते हैं। इसमें भी कोई शंका नहीं कि स्वाराज्यसिंहासनपर हमारा पूर्णाभिषेक हुआ है, तथापि किसी हठी शठने जो कि गोपङ्गनाओंका लम्पट है हमें बलपूर्वक अपना दास बना लिया, स्वामीको सेवक कर लिया।[2]

ये सब स्वगावोक्तियां हैं।

श्रीमद्भागवतमें कहा है—

जो लोग वर्णाश्रम-धर्मका पालन करते हुए ही निवास करते हैं तथा ज्ञानके लिए प्रयासका परित्याग करके विनयसे सन्तोंके द्वारा मुखरित आपकी कथा-वार्ताको ही भोजनके समान अपना जीवन बना लेते हैं—सचमुच आपकी कथा मौनी सन्तोंको भी मुखरित कर देती है—वह अपने आप ही कर्ण-कुहरमें प्रवेश कर जाती है। श्रुतिके आधारपर होती है। उनका शरीर कथामें, कथा वाणीमें और मन कथार्थके चिन्तनमें संलग्न रहता है। हे अजित ! यद्यपि आप अजित हैं तथापि इस त्रिलोकीमें रहते हुए ही प्रायः आपको जीत लिया है क्यों न हो, भक्ति ही ज्ञानका कारण बन जाती है। यह साधक जब केवल परमात्माको ही वरण करता है तब वह परमात्माको प्राप्त कर सकता है।[3]

---

१. ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्क्रियं
ज्योतिः किञ्चन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते।
अस्माकं तु तदेव लोचनचमत्काराय भूयाच्चिरं
कालिन्दीपुलिनेषु यत्किमपि तन्नीलमहो धावति॥

२. अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः स्वाराज्यसिंहासनलब्धदीक्षाः।
शठेन केनापि वयं हठेन दासीकृता गोपवधूविटेन॥

३. ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम्।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभि-
र्ये प्रायशोऽजितजितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम्॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्णने गीतामें कहा है, 'ब्रह्मभूत महात्मा भक्तिके द्वारा मेरा अभिज्ञान प्राप्त कर लेता है कि तत्त्वतः मैं कितना महान् और क्या हूँ।'

'जो लोग अपने मनमें मेरा प्यार आकार बुद्धिमें मेरा विचार भर लेते हैं अर्थात् मच्चित्त हो जाते हैं और मेरे लिए ही प्राण धारण करते हैं, परस्पर मेरा ही बोधन एवं कथन करते हैं, उसीमें नित्य सन्तुष्ट रहते हैं, रम जाते हैं, चरम निरुत्तर अवस्थाका अनुभव करते हैं, अपने ऐसे प्रेमी भक्तोंको मैं वह बुद्धियोग देता हूँ जिससे वे मुझे प्राप्त कर लेते हैं। उन्हींपर कृपा करनेके लिए मैं उनके आत्मभावमें स्थित हो जाता हूँ और प्रकाशमान ज्ञान-दीपसे अज्ञान जनित अन्धकारको दूर करता हूँ।'

परम प्रकाशमान प्रभु! तुम्हारी कथा-सुधाका पान करनेसे भक्ति बढ़ती है और अन्तःकरण शुद्ध होता है, ऐसे कथा प्रेमी भक्त वैराग्य सार बोध प्राप्त करके बड़ी सुगमतासे यथावत् आपकी प्राप्ति कर लेते हैं। जैसे वे प्राप्त करते हैं उसी प्रकार दूसरे महात्मा भी आत्मसमाधिके योगबलसे बलिष्ठ प्रकृतिपर विजय प्राप्त करके परम पुरुष आपको प्राप्त कर लेते हैं। इस मार्गमें बड़े धैर्यके साथ चलना पड़ता है और श्रम भी होता है, परन्तु आपकी सेवाके मार्गमें ऐसा श्रम नहीं होता।[1]

गीतामें स्पष्ट कहा है कि जिनका चित्त अव्यक्तमें आसक्त है उन्हें अधिकतर क्लेश होता है। क्योंकि देहाभिमानीके लिए अव्यक्त गति दुस्साध्य है। श्रीकृष्णने कहा है—'जो परम श्रद्धालु मुझमें अपना मन आविष्ट करके और नित्ययुक्त होकर मेरी उपासना करते हैं वे युक्ततम हैं'— ऐसा मैं मानता हूँ।

हे प्रभो! जो प्रत्येक परिस्थितिमें भली भाँति तुम्हारी कृपाका दर्शन करता रहता है, अपने पूर्वकर्मके विपाकको भोगता चलता है, हृदय वाणी और शरीरसे आपको नमस्कार करता रहता है, इस प्रकार जो जीवन व्यतीत करता है वह मुक्ति-पदका अनायास उत्तराधिकारी हो जाता है, जैसे पिताकी सम्पत्तिपर पुत्रका दायभाग।[2]

हे अर्जुन! जिन्होंने मुझमें अपने

१. पानेन ते देव कथासुधायाः प्रवृद्धभक्त्या विशदाशया ये
वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधं यथाऽञ्जसान्वीयुरकुण्ठधिष्ण्यम्।
तथाऽपरे चात्मसमाधियोगबलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठाम्
त्वामेव धीराः पुरुषं विशन्ति तेषां श्रमः स्यान्न तु सेवया ते॥

२. तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चित्तको प्रविष्ट कर दिया है, उन्हें मैं अविलम्ब मृत्युसंसारसागरसे पार उतार देता हूँ, उनका समुद्धार कर देता हूँ।[1]

इन शास्त्रवचनोंसे और ज्ञानको भक्तिका पुत्र कहनेसे भी यह ज्ञात होता है कि जब भक्त भगवत्स्वरूप-गुण-नामका श्रवण, कीर्तन, ध्यान, संवराधन आदिके द्वारा प्रसन्न भगवान्‌के अनुग्रहको प्राप्त करते हैं तब उन्हें भगवत्स्वरूपका साक्षात्कार होता है। किसी-किसीको वेदान्त श्रवणादिसे साक्षात्कार होता है। पहले वर्गके लिए यह बात कही गयी है कि ज्ञान होनेपर भी अद्वेष आदिके समान उनका भजन स्वभाव बना रहता है, दूसरे वर्गके लिए यह वचन है कि भक्तियोगका विधान करनेके लिए स्वयं भगवान् भजनीय रूपसे अवतार लेते हैं। कुन्ती-स्तुतिमें कहा गया है—

अमलात्मा परमहंस मुनीन्द्रोंके हृदयमें भक्तियोगका विधान करनेके लिए भगवान् अवतार लेते हैं।[2]

जो क्षीर-नीरके समान आत्मा एवं अनात्माका विवेक करनेमें निपुण हैं, केवल उन सांख्यवादी हंसोंके लिए ही नहीं, अपितु सत्य-अनृतके विवेकसे जिन्होंने अनृतका बाध कर दिया है और जिनका केवल अद्वयानन्द अधिष्ठान ब्रह्म ही शेष रह गया है, जो आरब्ध दुरदृष्ट मिट गया है, जो पर वैराग्यसे युक्त हैं उन अमलात्मा परमहंसोंके लिए भी भजनीयस्वरूप उपस्थित करनेके लिए औपनिषद परमतत्त्व ही दिव्य लीला शक्तिसे अवतीर्ण होता है। उस प्रत्यगात्मासे अभिन्न, ब्रह्मके अतिरिक्त अन्यत्र भजनीयता सम्भव ही नहीं है। क्योंकि जो अतिरिक्त होगा वह बाधित होनेके कारण मिथ्या होगा।

एक शंका है औपनिषद परम-पुरुष अपना आत्मा ही है, फिर दूसरे भजनीयकी क्या अपेक्षा है ? उत्तर—अपेक्षा है। क्योंकि भक्ति परमानन्द स्वरूप निरुपम सुख संवित् है। वह चतुर्थ अथवा पञ्चम पुरुषार्थ है। उसके रसास्वादनसे भक्ति ज्ञानमें एक अतिशय शोभाका आधान करती है। भक्ति सुषमासे अलंकृत होकर परम-हंस भी श्रीपरमहंस हो जाते हैं। [3]भागवतमें कहा है—

यद्यपि ज्ञान नैष्कर्म्य एवं निरञ्जन है, उसकी शोभा भी है,

---

१. तेषामहं समुद्धर्ता मृत्यु संसारसागरात्।
भवामि नचिरात् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥
२. तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येमहि स्त्रियः॥
३. नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परन्तु भगवद्भक्तिसे रहित ज्ञानकी पर्याप्त शोभा नहीं होती।

प्रत्यगात्मासे अभिन्न परमानन्द-घन ब्रह्मका साक्षात्कार करके जिनका हृदय परिपूर्ण हो गया है और अन्यके अस्तित्वकी भावना ही जिनमें नहीं है वे अन्यरूप धारण करके अवतीर्ण ब्रह्ममें भला क्यों प्रेम करने लगे? यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि भागवतमें ही ऐसे अनेक वचन हैं जिनसे ब्रह्मज्ञानीकी भक्ति सिद्ध होती है। देखिये सनत्कुमारके भगवद्दर्शनका प्रसंग—

अरविन्दनयन गोविन्दके पदारविन्द परागसे मिश्रित तुलसी मकरन्दकी वायु जब नासिका-छिद्रसे प्रविष्ट होकर सनक-सनन्दनके अन्तरङ्गमें पहुँचा तब भले ही वे ब्रह्मज्ञानी जीवन्मुक्त महापुरुष थे, परन्तु उनका मन और तन संक्षुब्ध हो उठा।[1]

श्रीशुकदेवजी महाराज कहते हैं कि परीक्षित! निर्गुण परब्रह्ममें मेरी परिपूर्ण निष्ठा है परन्तु उत्तमश्लोक भगवान्‌की लीलाने हमारे हृदयको ऐसा आकृष्ट कर लिया, कि मैंने इस भागवत-पुराणका सम्पूर्ण अध्ययन कर लिया। श्रीशुकदेवजी महाराजका वर्णन ही ऐसा है कि श्रीकृष्णकी रुचिरलीलाओंने उनके हृदयको अपनी ओर खींच लिया, ऐसे सैंकड़ों वचन मिलते हैं कि ब्रह्मज्ञानियोंके हृदयमें भी भगवान्‌के प्रति अतिशय प्रीति होती है।

अब एक प्रश्न है कि शब्द केवल अज्ञातका ज्ञान कराता है, अनधिगत-का अधिगम कराता है, वह अकृतका निर्माण नहीं करता, सौ-सौ शब्द भी घटको पट नहीं बना सकते, ऐसी अवस्थामें यदि ब्रह्मकी अपेक्षा अवतार-में विशेष चमत्कार न होता तो ब्रह्म-ज्ञानी महापुरुष भी उसकी ओर आकृष्ट कैसे होते? इस प्रश्नका उत्तर है कि हाँ, अवतारमें एक विशेष प्रकारका चमत्कार है, जैसे गन्नेके रससे अभिन्न होनेपर भी शर्करा, मिश्री, कन्द आदिमें चमत्कार विशेष होता है, ठीक उसी प्रकार ब्रह्म और अवतारमें भी समझना चाहिए। सच्चिदानन्द ब्रह्म अमृतरसका सरोवर है, उसकी अपेक्षा उसके सार-सर्वस्व सरोजरूप सगुण-ब्रह्ममें विशेष चमत्कारकी सिद्धि होती है। इसीसे श्रीकृष्णचन्द्रको आनन्दकन्द कहते हैं, उसी सच्चिदा-नन्द रस-सार-समुद्रसे समुद्भूत चन्द्र-स्वरूप होनेसे उन्हें चन्द्र भी कहते हैं। काष्ठमें व्याप्त अव्यक्त अग्निकी अपेक्षा व्यक्त अग्निके समान, जलकी अपेक्षा बरफके समान, निर्गुणकी अपेक्षा सगुणमें चमत्कारका तारतम्य होता है। जैसे रसाल वृक्षमें बीज अङ्कुर आदिकी अपेक्षा फलमें विशेषता होती

---

१. तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्दकिञ्जल्कमिश्रतुलसीमकरन्दवायुः।
अन्तर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां सङ्क्षोभमक्षरजुषामपि चित्ततन्वोः॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है वैसे ही सुरस सुगन्धि इक्षुदण्ड एवं चन्दन खण्डमें यदि सुन्दर फल-फूल लगते तो उनमें भी अवश्य कोई न कोई विशेष चमत्कार होता। इस प्रसंगमें भी ऐसा ही समझना चाहिए।

यद्यपि पूर्वोक्त युक्तिसे औपनिषद परमपुरुष अधिष्ठानब्रह्म निरतिशय निर्विशेष ही है, तथापि दिव्य लीला-शक्तिसे प्रारब्धावशिष्ट उपाधि दशामें सविशेषका अनुभव होनेमें कोई बाधा नहीं है। नेत्रोंसे देखे जानेवाले सूर्यकी अपेक्षा दूरवीक्षण आदि यन्त्र एवं उपनेत्रादिके द्वारा उपदिष्ट सूर्यमें विशेषता होती ही है, ठीक इसी प्रकार निर्वृत्तिक अन्तःकरणसे देखे हुए ब्रह्मकी अपेक्षा दिव्य आह्लादिनी आदि शक्तिसे व्यवहित अन्तःकरण-दृष्ट ब्रह्ममें विशेषका अनुभव होनेसे सिद्धान्तमें कोई विरोध नहीं है। सर्व उपाधियोंकी बाधिदशामें निरतिशय ब्रह्मकी उपपत्ति भी निर्बाध ही रहती है। श्रीकृष्ण निर्विकार ब्रह्मस्वरूप हैं। श्रीभगवत्पाद शङ्कराचार्यने भी ऐसा स्वीकार किया है—

श्रीकृष्णने ब्रह्माजीको बहुत-से ब्रह्माण्ड और प्रत्येक ब्रह्माण्डमें अद्भुत-अद्भुत ब्रह्मा, वही ग्वालवाल और वही बछड़े एवं सभी ब्रह्माण्डोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके विष्णु भगवान्‌के दर्शन करा दिये। शङ्कर भगवान् उनके चरणोदकको अपने सिरपर धारण करते हैं। निश्चय ही वे श्रीकृष्ण त्रिमूर्तिसे पृथक् कोई निर्विकार सच्चिदानन्द घन नीलिमा हैं।[1]

इस प्रकारके शास्त्रोक्त अनेक वचनोंकी संगति अपने आप ही लग जाती है, देखिये—

यदि इस ब्रह्मानन्दको दो परार्धकी संख्यासे गुणित कर दिया जाये, तब भी भक्तिरस समुद्रकी तुलनामें वह परमाणुके बराबर भी नहीं होगा।[2]

हे जगद्गुरो! मैं तुम्हारे साक्षात्कारके विशुद्ध आनन्दसागरमें उन्मज्जन-निमज्जन कर रहा हूँ। मुझे ब्रह्मसुख ऐसे लगते हैं जैसे गायके खुरके गड्ढे हों।[3]

वेद-स्तुतिमें कहा गया है कि अपने दुरधिगम आत्मतत्त्वका बोध

---

१. ब्रह्माण्डानि बहूनि पङ्कजभवान् प्रत्यण्डमत्यद्भुतान्
गोपान् वत्सयुतानदर्शयदजं विष्णूनशेषांश्च यः।
शम्भुर्यच्चरणोदकं स्वशिरसा धत्ते च मूर्तित्रयात्
कृष्णो वै पृथगस्ति कोऽप्यविकृतः सच्चिन्मयो नीलिमा॥

२. ब्रह्मानन्दो भवेदेष द्विपरार्धगुणीकृतः।
नैति भक्तिरसाम्भोधेः परमाणुतुलामपि॥

३. त्वत्साक्षात्करणाह्लाद विशुद्धाब्धिस्थितस्य मे।
सुखानि गोष्पदायन्ते ब्राह्माण्यपि जगद्गुरो॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राप्त करानेके लिए प्रभु अवतार ग्रहण करते हैं। उनके चरितामृतके महासमुद्रमें निमग्न होकर सत्पुरुष भावभ्रमणजनित क्लेश और साधन-श्रमका भी परित्याग कर देते हैं। वे प्रभुके चरण-कमलके प्रेमी हंसोंका संग करके घर-द्वार भूल जाते हैं और कोई कोई तो मोक्षकी अभिलाषा भी छोड़ देते हैं।

ध्रुवने कहा है कि हे प्रभो! जो निरावरण परमानन्द आपके चरणार-विन्दके ध्यानसे प्राप्त होता है और आपकी या आपके भक्तोंकी कथा श्रवण करनेसे होता है, वह अपनी महिमामें विराजमान ब्रह्ममें भी नहीं होगा।

निश्चय ही ब्रह्म परमार्थतः निर्विशेष है, तथापि विशुद्ध शक्तिके सहयोगसे चमत्कृतिके न्यूनाधिक्यका अनुभव युक्तिसंगत ही है। ब्राह्म-सुख भी गोपद हो जाते हैं। द्विपरार्ध-गुणित ब्रह्मानन्द भी भक्ति-रसाम्बुधि के परमाणुकी भी बराबरी नहीं कर सकता। यह कहनेका अभिप्राय यह है। शक्तिसहकृत अन्तःकरणमें व्यक्त होते हैं भगवान्। शक्ति रहित अन्तः-करणमें अभिव्यक्त होता है ब्रह्म। इसीसे भगवान्के अनुभवमें विशेषताका वर्णन है। ऐसे-ऐसे असंख्य कार्य ब्रह्मकी अपेक्षा भगवान्की विशेषताका वर्णन करनेके लिए भी ऐसा कहा गया है। यह भक्तोंके भावोद्रेकमूलक वचन भी हो सकते हैं। शुकसनकादि, शंकर सुरेश्वर, पद्मपाद, चित्सुख, सर्वज्ञात्म, श्रीधर स्वामी आदि सहस्रों श्रेष्ठतम ब्रह्मवेत्ता भगवान्के प्रति वैसा ही अकैतव प्रेम करते हैं। स्वयं श्रीकृष्णने ही कहा है कि ज्ञानी एकभक्ति होनेके कारण विशिष्ट है।

उपनिषदोंमें यह जो कहा गया है कि वह ब्राह्मण, क्षत्रिय देवता और सब कुछको अपनेसे पृथक् मानता है, वे सब उसका तिरस्कार या अपवाद कर देते हैं। इन वचनोंका अभिप्राय यह है कि अनात्मरूपसे किसीको भी देखना अनर्थका हेतु है। ऐसी स्थितिमें भगवान्को अनात्मरूपसे देखना तो सर्वथा ही अनर्थका हेतु है। प्रेम व्यव-धानको सहन नहीं करता। अतएव यदि भगवान् भी व्यवहित और असन्निहित होंगे तो उनसे भी स्वाभा-विक और कैतवरहित (निष्कपट) प्रेम नहीं होगा। इसीसे शास्त्र कहते हैं कि परमात्मा सर्वान्तर परमसन्निहित एवं प्रत्यगरूप है।[1]

मनुष्यलोकमें निष्कपट-अकैतव प्रेम नहीं होता। यदि निष्कपट प्रेम होता तो विरह किसे होता? यदि निष्कपट प्रेममें विरह हो ही जाता तो जीवित कौन रहता?

---

१. कैतवरहितं प्रेम न तिष्ठति मानुषे लोके।
यदि भवति कस्य विरहो सति विरहे को जीवति॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्वोक्त बातें भक्तिशास्त्रमें प्रसिद्ध हैं। अतएव सिद्धान्तके अनुसार भक्ति-पथका प्रदर्शन अत्यन्त आवश्यक मानकर ही श्री मधुसूदनजी सरस्वती महाराजने भक्तिरसायनका निर्माण किया। हमने भी उसी राजमार्गका अनुसरण करके यथामति भक्तिरसार्णवकी रचना की। यह रसार्णव जगदम्बासहित भगवान्‌का सुखशयनागार बने, यह प्रार्थना करके अब हम यहीं विश्राम लेते हैं। •

अजित आपकी जय हो !

जय जयाजित जह्यगजङ्गमावृतिमजामुपनीतमृषागुणाम्।
नहि भवन्तमृते प्रभवन्त्यमी निगमगीतगुणार्णवता तव॥

अजित! आपकी जय हो- जय हो, जय हो! झूठे गुण धारण करके चराचर जीवको आच्छादित करनेवाली इस मायाको नष्ट कर दीजिये। आपके बिना बेचारे जीव इसको नहीं मार सकेंगे—नहीं पार कर सकेंगे। वेद इस बातका गान करते रहते हैं कि आप सकल सद्‌गुणोंके समुद्र हैं।

द्रुहिणवह्निरवीन्द्रमुखामरा जगदिदं न भवेत्पृथगुत्थितम्।
बहुमुखैरपि मन्त्रगणैरजस्त्वमुरुमूर्तिरतो विनिगद्यसे॥

ब्रह्मा, अग्नि, सूर्य, इन्द्र, आदि देवता तथा यह सम्पूर्ण जगत् प्रतीत होनेपर भी आपसे पृथक् नहीं हैं। इसलिए अनेक देवताओंका प्रतिपादन करनेवाले वेदमन्त्र उन देवताओंके नामसे पृथक्-पृथक् आपकी ही विभिन्न मूर्तियोंका वर्णन करते हैं। वस्तुतः आप अजन्मा हैं। उन मूर्तियोंके रूपमें भी आपका जन्म नहीं होता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छान्दोग्य : एक दृष्टि

: ३ :

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

सद्विद्या और भूमविद्यामें इस सिद्धान्तका स्पष्टतः प्रतिपादन किया गया कि सत्तत्त्व आत्मतत्त्व अथवा ब्रह्मतत्त्वमें किसी प्रकारका भेद-परिच्छेद नहीं है। विविधरीतिके जो परिच्छेदकी जातियाँ हैं उनके अत्यन्ताभावसे उपलक्षित ब्रह्मतत्त्व। ठीक है, परन्तु साधारण बुद्धि-मनुष्य भेदयुक्त वस्तुका ही ग्रहण करती है परमार्थ ब्रह्मको ग्रहण करनेमें असमर्थ है। ऐसी स्थितिमें उसको परम पुरुषार्थ मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सकती। उसपर कृपा करनेके लिए वेद भगवान् हृदयकमलमें परमात्माके अन्वेषणका उपदेश करते हैं। यद्यपि आत्मतत्त्व सद्विषयक सम्यक् प्रत्ययसे ही जाना जाता है क्योंकि वह निर्गुण है तथापि मन्द-बुद्धिपुरुष गुणवत्ताको ही अभीष्ट मानते हैं, अतः उपासनाके लिए उसमें सत्यकाम आदि गुणोंका प्रवचन भी इष्ट है। यद्यपि ब्रह्मवित् पुरुषोंकी मनोवृत्ति स्वयमेव विषयोंसे उपरत रहती है तथापि अनादिकालीन जन्म-जन्मान्तरके विषयसेवनके अभ्यास संस्कारोंके कारण विषयतृष्णाको एकाएक निवृत्त नहीं किया जा सकता। अतः ब्रह्मचर्यादि रूप साधन-विशेषका भी विधान करना है। आत्मवस्तुमें गमनागमन गन्तव्यका अभाव ही है, तथापि जिनकी बुद्धिमें उनका संस्कार बैठा हुआ है उनको गतिका वर्णन करके परमार्थसत्य वस्तुको भी लखाना है। अच्छा हो कि उन्हें भी सन्मार्गमें डाल दिया जाये कि वे सत्यग्रहणके योग्य हो जायें। इन्हीं सब बातोंको ध्यानमें रखकर अद्भुतरीतिसे इस प्रसंगका प्रस्ताव किया गया है।

इस शरीरमें एक छोटा-सा कमल है। उसको हृदय-पुण्डरीक कहते हैं। वह ब्रह्मकी उपलब्धिका स्थान है। जैसे सालिग्रामशिला विष्णुका स्थान है। इसमें जो आकाश है और उस आकाशके भीतर जो छिपा हुआ है उसका अन्वेषण करना चाहिए और उसकी जिज्ञासा करनी चाहिए।

भला इस नन्हेंसे आन्तर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आकाशमें ऐसी क्या वस्तु है जिसकी गवेषणा या जिज्ञासा करनी चाहिए ? अच्छा तो सुनिये । यह बाहर जितना बड़ा आकाश है, उतना ही बड़ा अन्तर हृदयमें भी है । उसमें द्युलोक पृथ्वी, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, विद्युत् नक्षत्र सब समाये हुए हैं । मनुष्य इस लोकमें जिस वस्तुको आत्मीय रूपसे जानता है और जिसको नहीं जानता है, जो उसके पास है तथा जो नहीं है, वह सब इसी हृदय पुण्डरीकसे अवच्छिन्न आकाशमें समाहित हैं । शरीरके नष्ट होनेपर भी यह छोटा-सा हृदयकमलाकाश नष्ट नहीं होता । इसमें जरा-मृत्युका प्रवेश नहीं है । इसीमें सभी कामनाएँ भरपूर हैं । यह आत्मा है, इसमें पाप-पुण्यका प्रवेश नहीं है, जरामृत्यु, शोक, भूख, प्यास इसका स्पर्श नहीं कर सकते । यह सत्यकाम-सत्यसंकल्प है । जैसे प्रजा-वर्ग जिस जनपद या क्षेत्रमें अपनी कामनाओंकी पूर्ति देखते हैं वहाँ वहाँ जाते हैं वैसे ही सारी प्रजा अपनी कामनाओंकी पूर्तिके लिए इसी हृदय-कमलमें प्रवेश करती है ।

कामनाओंकी पूर्ति कर्मके अनुसार ही होती है । वे चाहे इस जन्मके हों चाहे पूर्व जन्मके । अत: कामपूर्ति पराधीन है । जैसे इस लोकमें कर्म संचित सुख क्षीण हो जाता है वैसे ही परलोकमें भी पुण्यसंचित लोक क्षीण हो जाते हैं । अज्ञानके कारण जो कामनाओंकी पूर्तिके लिए इसमें प्रवेश करते हैं वे उन्हींमें आबद्ध हो जाते हैं, उनकी स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है, परन्तु जो आत्माके स्वरूपको शास्त्राचार्यके उपदेशके अनुसार स्वसंवेद्य बनाकर इसमें प्रवेश करते हैं वे स्वतन्त्ररूपसे उनमें विचरण कर सकते हैं । वे सत्यसंकल्प हो जाते हैं । वे जो चाहें सो उन्हें मिल सकता है । वे पिता माता, भाई, बहन मित्र आदिके लोकमें जाना चाहें उनसे मिलना चाहें, जा सकते हैं, मिल सकते हैं । सम्मान, भोग, सौख्य स्त्री जो कुछ भी चाहें अपने संकल्पसे प्राप्त कर सकते हैं ।

यह जो काम्यमान वस्तुएँ सत्य मालूम पड़ती हैं, वे असत्यके ढक्कनसे ढकी हुई हैं । वस्तुतः सत्य पदार्थ तो ब्रह्म ही है । परन्तु तुम्हें पहचान नहीं है । वे सुवर्णकी खानपर ऊपर-ऊपर घूमते ही रह जाते हैं उन्हें सुवर्णकी प्राप्ति नहीं होती । हाय हाय, यह प्रजा दिन-प्रतिदिन ब्रह्म-लोकमें जाती है परन्तु पहचान नहीं पाती कि यह ब्रह्मलोक है । क्योंकि अनृतने उनका अपहरण कर लिया है । निश्चय ही यह आत्मा हृदयमें ही निवास करती है । हृदय शब्दकी निरुक्ति ही यह है—हृदि अयम् । परमात्मा हृदयमें रहता है । यह ज्ञान ही परमसुखकी कुंजी है ।

जो विवेकके द्वारा इस शरीरस्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हृदय और हृदयावच्छिन्न अवकाशसे अपनेको अलग करके जान लेता है वह अपने स्वरूपमें स्थित हो जाता है। वह स्वरूप क्या है? अमृत है। अविनाशी भूमा ही अमृत है, अभय है क्योंकि दूसरा कोई है ही नहीं। इसी ब्रह्मका नाम सत्य है।

यह आत्मा सेतु एवं विधृति है। यदि यह विश्वको धारण न करता तो सम्पूर्ण विश्व नष्ट ही हो जाता। सब वस्तुओंकी, कारकोंकी और क्रिया-कलापोंकी यही सीमा है। यहाँ पहुँचकर सारे फल समाप्त हो जाते हैं। इसको काल, जरा, मृत्यु शोक, सुकृत, दुष्कृत अपना विषय नहीं बना सकते। कोई भी कार्य अपने कारणका अतिक्रमण नहीं कर सकता। पूर्वोक्त सभी पदार्थ सत्के कार्य हैं। दूसरा दूसरेको प्राप्त करता है या अतिक्रमण करता है। घट मृत्तिकाको न प्राप्त करता है न अतिक्रमण करता है। चाहे नाम लिया हो या न लिया हो वे सब पाप्मा हैं और सत्को प्राप्त किये बिना ही लौट आते हैं, यही आत्मा है। यही ब्रह्मरूप लोक है।

इसके मिलनेपर देह दृष्टिसे अन्धा भी अन्धा नहीं रहता, विद्ध, अविद्ध हो जाता है, दुःखी सुखी हो जाता है। इसकी प्राप्तिसे रात भी दिन हो जाती है। यह आत्मा सदा प्रकाश-मान है, ब्रह्म है।

इसकी प्राप्तिके लिए ब्रह्मचर्यकी साधना है। ब्रह्मचर्यका ही एक नाम यज्ञ है। क्योंकि यज्ञ शब्दका विभाग करनेपर 'य' और 'ज्ञ' दो वर्ण निकलते हैं इसका अर्थ है कि जो ज्ञाता है, आत्मा है। इष्ट भी ब्रह्मचर्य ही है। इसीसे ईश्वरकी उपासना होती है। आत्मविषयक ऐषणा ही इष्ट है। सत्रायण ब्रह्मचर्य है, सत् अर्थात् आत्माके त्राणका अयण, सत्सङ्ग है। मौन ब्रह्मचर्य है, क्योंकि उसमें मनन होता है। अनाषकायण अर्थात् तप भी ब्रह्मचर्य है क्योंकि वह अविनाशी होता है। अरण्यायण भी ब्रह्मचर्य है। ये सब परमात्माकी प्राप्तिमें साधन होते हैं।

प्रश्न यह है कि ब्रह्मलोकमें जो पदार्थ देखे जाते हैं, संकल्पसे पैदा होते हैं, पिता माता आदिका संयोग प्राप्त होता है—वे सब इसी लोकके पदार्थोंके समान मिट्टी पानीसे बने हुए होते हैं या मानस-प्रत्यय होते हैं, क्या वहाँके समुद्र, वृक्ष, नगरी, स्वर्ण-मण्डप जाग्रत् पदार्थके समान सच्चे होते हैं अथवा मनोमय? कहा तो यह जाता है कि वहाँ सब शरीरधारी मूर्तिमान होकर ब्रह्माकी सेवा करते हैं। ठीक है, परन्तु ये मिट्टी-पानीके बने पुतले ब्रह्मलोकमें प्रवेश नहीं कर सकते। किसी दूसरे प्रकारके शरीर होंगे या दूसरे प्रकारकी मूर्तियाँ होंगी। देखो जी! जब कल्पना ही करनी है कि कैसी होती हैं तो मानस-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आकारकी कल्पना ही युक्त है। मानस-देहका सम्बन्ध ही वहाँ युक्ति-युक्त हो सकता है। स्वप्नमें स्त्री-पुरुषादि जितने भी आकार देखते हैं वे सब मानस-मूर्तिके रूपमें ही होते हैं। अच्छा, तब तो वे सब स्वप्नके समान मिथ्या होंगे। श्रुति तो कहती है कि वहाँके कामभोग सत्य होते हैं। यह विरोध कैसे दूर हो ? मानस-प्रत्यय भी सत्त्वात्मक ही होते हैं। स्वप्नमें जो स्त्री-पुरुषादिके रूपमें मानस-आकार देखते हैं वे सब जाग्रत्कालीन वासनाके अनुरूप ही होते हैं। स्वप्नमें वे पदार्थरूपसे विद्यमान नहीं होते। स्वप्नके विषय मिथ्या होते हैं, यह कहना तो बहुत थोड़ा है। जाग्रत्के विषय भी मानस-प्रत्ययोंसे ही बनते हैं। सद्वस्तुके ईक्षणसे तेज जल और अन्न बनते हैं। सारे विषय उन्हींके विलास हैं। सब लोकोंका मूल संकल्प है। द्यावा-पृथ्वीकी कल्पना होती है। प्रत्य-गात्मासे ही उत्पत्ति, प्रलय और स्थिति होते हैं। वस्तुतः बाह्य और मानसमें कोई भेद नहीं है। लौकिक-पारलौ-किक सत्त्व एक-सा ही होता है। सच पूछो तो अध्यस्तकी आत्मा अधिष्ठान ही है। अधिष्ठानके तादात्म्य-से ही अध्यस्तका स्फुरण होता है। अतः दृश्यमान विषयोंमें सत्त्व तो मानना ही पड़ेगा। वे आकाररूपसे मिथ्या हैं, सन्मात्ररूपसे सत्य हैं। अतः ब्रह्मलोकका गमनागमन भी अधिष्ठानकी सत्तासे सत्य होनेके कारण श्रौत ही है। उस गमनागमनमें जो आत्मा है वह पाप-पुण्य जरा-मृत्युसे युक्त है। उसमें शोक, भूख-प्यास नहीं है। वह सत्यकाम है, सङ्कल्प है। जीवनमें वही अन्वेषणीय है और जिज्ञास्य है। जो उसको जान लेता है उसको कुछ भी अप्राप्त नहीं रहता।

यह है प्रजापतिका व्याख्यान। लौकिक जिज्ञासु और परलोकमें गमनागमनशाली ब्रह्मलोकमें जाने-वाला पुरुष सबका आत्मा ब्रह्म ही है। उसको जान लेनेपर अज्ञात, अमत, अश्रुत और अप्राप्त कोई वस्तु नहीं रहती। इस व्याख्यानको देवता और असुर दोनोंने सुना और समझा। उन्होंने कहा, अहो! हम इसी आत्माको प्राप्त करेंगे क्योंकि इसके प्राप्त हो जानेपर सब लोक और सब कामनाएँ प्राप्त हो जाती हैं। देवताओंके राजा इन्द्र और असुरोंके राजा विरोचन दोनों प्रजापतिके पास उपस्थित हुए। उन दोनोंने आपसमें कोई सलाह नहीं की थी। स्पष्ट है कि देवताओं और असुरोंके राज्यसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है यह ब्रह्मविद्या। सर्वानुमतिसे उन दोनोंने राज्यभार दूसरोंपर डालकर विनयसे गुरुशरण ग्रहण की। इतना अवश्य है कि ब्रह्मविद्याका फल प्राप्त करनेके लिए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दोनोंमें ईर्ष्या थी परन्तु समित्पाणि होकर शरणागत दोनों ही हुए थे।

इन्द्र और विरोचन दोनों ही बत्तीस वर्ष तक ब्रह्मचर्यका पालन करके प्रजापतिकी सेवामें संलग्न रहे। अब जाकर प्रजापतिने उनसे पूछा कि तुमलोग किस इच्छासे मेरे पास रह रहे हो? दोनोंने निवेदन किया कि हम लोगोंने आपकी वह सुनी थी जिसमें आपने कहा था कि आत्माके अनुसन्धान और जिज्ञासासे सब लोकोंकी और कामनाओंकी प्राप्ति हो जाती है, उसका विज्ञान प्राप्त करना चाहिए। वही विज्ञान प्राप्त करनेके लिए हमलोग आपके पास उपस्थित हुए। यह ध्यान देने योग्य है कि वे दोनों प्रजापतिके समीप आगमनसे पूर्व परस्पर ईर्ष्यासे युक्त थे तथापि विद्याप्राप्ति रूप प्रयोजनकी गुरुताके कारण उन्होंने राग, द्वेष, मोह, परस्पर ईर्ष्या आदि दोषोंका परित्याग करके ही प्रजापतिके पास ब्रह्मचर्यका पालन किया। इससे आत्मविद्याका महत्त्व ही सिद्ध होता है।

प्रजापतिने दोनोंसे ही कहा—यह जो नेत्रमें पुरुष दीखता है वह द्रष्टा आत्मा है। आँखोंके भीतरसे वही झाँक रहा हैं। यही अमृत है। अभय है। यही ब्रह्म है। दोनोंने कहा—जो आँखोंमें दीखता है वही जलमें दीखता है, वही शीशेमें भी दीखता है। भगवन्! इनमेंसे वह कौन है? प्रजापतिने कहा—सभीमें, अन्तमें और मध्यमें वही प्रकट हो रहा है। प्रजापतिने जान लिया कि मैंने तो चक्षुसे उपलक्षित द्रष्टाको ही ब्रह्म कहा था परन्तु इन्होंने अन्यथा ही ग्रहण कर लिया।

यहाँ एक प्रश्न है—इन्द्र और विरोचन प्रजापतिके शिष्य हैं, उन्होंने समझ लिया कि शिष्योंने विपरीत ग्रहण कर लिया है। जो नेत्रके पीछे रहकर नेत्रसे देखता है उसको इन्होंने नेत्रके सामने छायाके रूपमें ग्रहण कर लिया है। फिर प्रजापतिने उनके इस भ्रमको दूर क्यों नहीं किया, अनुज्ञा क्यों दे दी? प्रजापति एक निर्दोष गुरु हैं, उनके लिए ऐसा कहना उचित नहीं लगता। आपका कथन सत्य है, परन्तु प्रजापतिने स्वीकृति नहीं दी है। प्रजापतिका आशय यह है कि ये दोनों जिज्ञासु अपनेमें पाण्डित्य, महत्त्व और बोद्धापनका अध्यारोप किये हुए हैं और इनकी प्रजा और दूसरे लोग भी इन्हें ऐसा ही मानते हैं। यदि मैं इनको कहूँ कि तुमलोग मूढ़ हो, विपरीतग्राही हो तो इनके मनमें दुःख हो जायेगा। जब इनका चित्त क्षुभित हो जायेगा तो पुनः प्रश्न करने, श्रवण करने, ग्रहण करने और निश्चय करनेके प्रति इनके उत्साहमें बाधा पड़ जायेगी। अतः इनके चित्तकी रक्षा करना आवश्यक है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रजापतिने विचार किया, भले यह अभी ऐसा विपरीत ग्रहण कर लें जल भरे पात्रके दृष्टान्तसे इनका भ्रम दूर कर दूंगा। इसमें अनृत भी नहीं है क्योंकि प्रजापतिने अक्षिपुरुष बताया और शिष्योंने छायापुरुषका ग्रहण किया। ये दोनों बातें स्पष्ट मनमें दिख रही हैं। श्रुति कहती है वह सबके भीतर है, सबसे अन्तरंग है। अतः उन्होंने उनके भ्रमकी निवृत्तिके लिए कहा।

प्रजापतिने आज्ञा की—तुमलोग जलभरे पात्रमें अपनेको देखो, यदि वहाँ अपनेको न पहचान सको तो फिर मुझसे कहो। उन्होंने ऐसा ही किया और प्रजापतिके पूछनेपर कह दिया—भगवन्! हम पूर्णरूपसे अपने आपको देख रहे हैं, रोम-रोम और नखतक। यह हमारा प्रतिरूप है। प्रजापतिके कहनेपर उन्होंने वस्त्राभूषण करके देखा और प्रजापतिके पूछनेपर उन्होंने कहा कि हमलोगोंने अपनेको वस्त्रालंकारधारीके रूपमें ठीक-ठीक देख लिया। प्रजापतिने कहा, ठीक है, जिस प्रतिबिम्बको तुम लोग देख रहे हो, उसका बिम्ब अमृत है, अभय है, ब्रह्म है। दोनोंको ऐसा लगा कि हमने आत्माको जान लिया। वे सन्तुष्टहृदय कृतार्थ होकर वहाँसे लौट पड़े। प्रजापतिने विचार किया कि इन्होंने आत्माका ज्ञान प्राप्त किये बिना ही अपनेको कृतार्थ मान लिया तो देवता-असुर इनको पराजित कर देंगे। विरोचन सन्तुष्टहृदयसे असुरोंके पास गया और कहने लगा—प्रजापतिकी सेवा करके मैंने यह आत्मज्ञान प्राप्त किया है, यह शरीर ही आत्मा है, इसीको महान् बनाना चाहिए और इसकी सेवासे ही लोक-परलोककी प्राप्ति होती है।

आज भी देखनेमें आता है कि विरोचन आचार्यके द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय चलता है। वे दान नहीं करते, श्रद्धा नहीं करते, यज्ञ नहीं करते। यह आसुरविज्ञान है। वे मरे हुए पुरुषके शरीरकी सेवा करते हैं। उसीको वस्त्रालंकार धारण कराते हैं, सँवारते सजाते हैं और ऐसा मानते हैं कि मरे हुएकी सेवासे ही परलोकपर विजय प्राप्त होती है।

इन्द्र देवलोकमें नहीं गये। मार्गमें ही उन्हें विचारका उदय हुआ, भयका उदय हुआ। यह तो शरीरकी छाया है। जैसा वस्त्रालंकार हो वैसा दिखता है। शरीर अन्धा हो, काना हो, कटापिटा हो तो छाया भी वैसी ही है। शरीरके मर जानेपर यह भी मर जायेगी। घरसे चले थे राज्य-सुख भोग छोड़कर सबलोक और सर्वकामकी प्राप्तिके लिए परन्तु यहाँ तो कुछ हाथ नहीं लगा, आत्मज्ञानका फल तो दृष्ट है, इसी जीवनमें है, छायाको आत्मा मान लेनेपर क्या फल मिला? वह फिर श्रद्धाके साथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समित्पाणि होकर प्रजापतिकी शरणमें आ गया। प्रजापतिके पूछनेपर उसने कहा कि मुझे तो इस ज्ञानसे कुछ नहीं मिला। प्रजापतिने कहा—तुम ठीक कह रहे हो। इन्द्र! और बत्तीस बरसतक तुम ब्रह्मचर्यका पालन करो।

प्रजापतिने समझाया, जाग्रत् शरीर आत्मा नहीं हो सकता। इसीकी छाया दीखती है। यह पैदा हुआ है मरेगा। तुम इससे अलग हो। देखो, जो इस शरीरसे पृथक् होकर स्वप्नमें अपनी महिमा प्रकट करता है वहाँ 'स्रक्चंदनवानितादि' भोग प्राप्त होते हैं। वह जाग्रत्स्थान स्थूल-शरीरसे अलग स्वप्न-स्थान आत्मा है, वही अमृत, अभय ब्रह्म है। इन्द्र वहाँसे सन्तुष्ट होकर चला तो सही, परन्तु मार्गमें उसे विवेकका उदय हुआ और स्वप्नद्रष्टाको आत्मा माननेमें अनेक दोष ज्ञात होने लगे। उसने विचार किया कि यद्यपि शरीरके अन्धा होनेपर भी स्वप्नात्मा अन्धा, काना नहीं होता, जाग्रत् शरीरके दोष उसमें नहीं जाते, इसके मरनेसे भी वह नहीं मरता, परन्तु फिर भी स्वप्नमें इसको लोग मारते हैं, ढक देते हैं, अप्रिय होता है, रोना भी पड़ता है, फिर स्वप्नात्मा होनेसे क्या लाभ हुआ? इसमें तो कुछ भी भोग्य-सुख नहीं मिला। हमको परलोकका सुख नहीं चाहिए, हमें तो तत्काल आत्म-सुख चाहिए। इन्द्रने पुनः लौटकर प्रजापतिसे निवेदन किया, महाराज! आपने तो अमृत, अभय ब्रह्मका उपदेश किया था, वह सत्य होना चाहिए परन्तु स्वप्नात्मामें तो कहीं भी अभय-अमृतका अनुभव नहीं होता। प्रजापतिने कहा, बत्तीस बरस और ब्रह्मचर्यका पालन करो। इन्द्रने वैसा ही किया।

इसका कारण यह है कि इन्द्र विवेकी पुरुष है। भोग, ऐश्वर्य त्यागकर वैराग्यपूर्वक जिज्ञासाके भावसे गुरुकी सेवा कर रहा है। इतना तो उसको स्पष्ट है कि प्रजापतिने जो अक्षिपुरुषका उपदेश किया है वह छायात्मा नहीं है अन्यथा वह फिर लौटकर क्यों आता? अमृत और अभयकी संगति तो सर्वथा ही नहीं लगती है। यह भी है कि अभीष्ट फलकी प्राप्ति भी नहीं हुई। ऐसी स्थितिमें पहलेके समान अब भी कोई प्रतिबन्धका कारण विद्यमान है। अतएव उसने बत्तीस बरस और ब्रह्मचर्यका पालन किया, जब उसके कल्मष क्षीण हो गये, तब प्रजापतिने पुनः उपदेश किया।

इन्द्र विचार करो। वस्तुतः आँखोंमें जो द्रष्टा रहता है वह आँखोंसे निराला है। वाम और दक्षिण दो नेत्रगोलक हैं। देखनेकी शक्ति एक ही नेत्रेन्द्रिय है। बाहरकी सृष्टि नेत्रेन्द्रियके द्वारा अर्थात् इन्द्रियोंके द्वारा दीखती है। परन्तु स्वप्नमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाहरके गोलक और इन्द्रिय नहीं रहते हैं, फिर भी स्वप्नमें मन अपनी माया फैला देता है और यह अपने ही प्रपञ्चको देखता है परन्तु जब पूरी तरह सो जाता है सम्प्रसन्न, तब न कोई दृश्य है, न वासना है, न विक्षेप है, न व्यक्तित्वका भान है। जैसे स्वप्नमें जाग्रत्को भूल जाता है वैसे ही सुषुप्तिमें जाग्रत् और स्वप्न दोनोंको ही भूल जाता है। देखो इन्द्र! यह जो कुछ नहीं जानता है, कुछको मैं मेरा नहीं करता है, वह आत्मा है। वही अमृत, अभय ब्रह्म है। इन्द्र यह सुनकर शान्त हृदयसे वहाँसे चल पड़े, परन्तु देवलोकमें पहुँचनेसे पहले ही उनके हृदयमें विवेकका उदय हुआ।

वे सोचने लगे, यह क्या आत्मा है, यह अमृत, अभय कैसे है, यह तो सुषुप्तिकालमें न अपनेको जानता है यह मैं हूँ और न जाग्रत् स्वप्नमें दीखनेवाले भूतोंको ही जानता है। यह तो उस समय मानो विनाशमें ही लीन हो जाता है, विनष्ट हो जाता है, यदि ज्ञान होता तो ज्ञाताके सद्भावका तो अधिगम होता। यदि यही आत्मा होता तो प्रजापतिने इसको अभय, अमृत ब्रह्म कैसे कहा होता। ऐसा लगता है कि उनके द्वारा उपदिष्ट तत्त्वका अभी मुझे साक्षात्कार नहीं हुआ। उनका उपदेश सच है, परन्तु मुझसे ठीक-ठीक ग्रहण नहीं हुआ। इन्द्रके त्याग, वैराग्य, विवेक, श्रद्धा और तीव्र जिज्ञासा देखकर प्रजापति बहुत प्रसन्न हुए। सच है इन्द्र, सुषुप्ति दशामें कुछ भी अमृत अभय नहीं है। वहाँ न कोई सुख है, न कोई ज्ञान है। सुषुप्ति-दशा सत् भी तो नहीं है, बदल जाती है टूट जाती है। वह सच्चिदानन्द आत्मा कैसे हो सकती है? पाँच बरस और ब्रह्मचर्यका पालन करो। इन्द्रने वैसा ही किया।

प्रजापतिने कहा—इन्द्र, यह शरीर मरणधर्मा है, जीर्ण-शीर्ण हो रहा है। यह क्षण-क्षण छीज रहा है और मृत्यु इसको ग्रस रही है। इसीमें इन्द्रिय और मन भी निवास करते हैं। तुमने तीन अवस्थाएँ देखी हैं—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति। ये तीनों परस्पर विलक्षण हैं, एकसे दूसरी अवस्था अलग होती है। जाग्रत् स्वप्नके देश-काल और पदार्थ अलग-अलग होते हैं। स्वप्नमें मित्र मिले तो जाग्रत्में वह मिलनेका हाँ नहीं कर सकता। धन, भवन, मरण, जीवन अपना शरीर सब कुछ पृथक्-पृथक् ही होता है। जाग्रत्के पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, द्युलोक, सूर्य, चन्द्रमा, स्वप्नमें नहीं होते और स्वप्नके जाग्रत्में नहीं होते। इनसे बने विकार और कर्म ज्ञानके करण भी विलक्षण ही होते हैं। सुषुप्तिमें यह सब कुछ नहीं होता, वहाँ माता-पिता, पति-पत्नी, देवतादेव,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाप-पुण्य, सुख-दुःख, राग-द्वेष, ममता-अहिंसा कुछ नहीं रहते हैं। इसका अर्थ है कि ये सब अवस्थाओंके विकार हैं। यह प्रपञ्चकी योजनों लम्बाई-चौड़ाई युग, मन्वन्तर, कल्पके काल और वस्तुओंके विस्तार, सचमुच मनोविलास ही हैं। क्योंकि मनके न रहनेपर या सो जानेपर ये सब नहीं रहते हैं, ये सो जाते हैं। परन्तु एक वस्तु ऐसी है, जो इन तीनों शरीरोंमें तीनों अवस्थाओंमें एक-सी रहती है। अवस्थाओंके बदलनेसे वह बदलती नहीं। अवस्थाओंके अज्ञात होनेसे वह अज्ञात नहीं होती। वही है अपना शुद्ध आत्मा। वह अमृत है, अशरीर है। उसकी उपलब्धिका स्थान है यह शरीर। वही इसमें जीवरूपसे तादात्म्य करके अवस्थाओंको और उनके गुणधर्मोंको अपनेमें आरोपित कर लेता है। जब वह अपनेको शरीरधारी रूपमें मानने लगता है तो शरीरके प्रियको अपना प्रिय और शरीरके अप्रियको अपना अप्रिय समझ बैठता है। जब आत्मा नित्य, मृत्युग्रस्त, धर्माधर्महेतुक, प्रियाप्रिययुक्त शरीरको अपना मान बैठता है, अविवेकसे अहं कर लेता है तब वह शरीरधारी हो जाता है। मैं ही शरीर हूँ तब शरीरकी मृत्यु, मूर्खताएँ और दुःख अपने हो गये। ऐसी स्थितिमें प्रिय-अप्रियके संयोगवियोगसे होनेवाले मैं-मेरा, सुख-दुःख, इनका विनाश नहीं हो पाता। जब यह अपनेको अशरीर रूपसे जान लेता है तब अविवेककी निवृत्ति हो जानेसे अशरीर हो जाता है और फिर प्रिय-अप्रिय इसका स्पर्श नहीं करते। प्रिय भी इसका स्पर्श नहीं करता है, अप्रिय भी स्पर्श नहीं करता है जैसे म्लेच्छ अपवित्र और पापीका स्पर्श करना वर्जित है, उसी प्रकार विवेकी पुरुष भी इस शरीरका स्पर्श, तादात्म्य, मैं—मेरा वर्जित कर देता है।

अब एक प्रश्न है कि प्रियता भी अशरीर आत्माका स्पर्श नहीं करती। यह तो ठीक वैसा ही हो गया जैसा कि सुषुप्ति अवस्थाका वर्णन है, विनाशकी ही प्राप्ति है। ऐसा नहीं है। थोड़ा विचार करके देखिये। प्रिय-अप्रिय कहाँसे आते हैं? धर्माधर्मसे उत्पन्न होते हैं और शरीरसे आकर जुड़ते हैं। अशरीर आत्मामें न धर्माधर्म है, न प्रिय-अप्रिय है, न संयोग-वियोग है। अतः उन्हींका यहाँ निषेध किया गया है। यहाँ अपने स्वरूपभूत आनन्दका निषेध नहीं है। विज्ञानमानन्दं ब्रह्म अथवा आनन्दो ब्रह्म इसका निषेध नहीं है। वह तो अशरीर आत्मा ही है। अभी-अभी तो कहा है कि भूमा ही सुख है।

इस प्रसंगमें एक विचारणीय विषय है। इन्द्र कोई निर्विशेष वस्तु नहीं चाहते हैं। वे ऐसी वस्तु चाहते हैं जो अपनेको जानता है कि मैं यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हूँ, साथ ही दूसरोंको जानता है कि यह भूत है। वह केवल विनाशदशाको नहीं चाहता। वह तो कोई भोग्य दृष्ट-सुख चाहता है और कहता है **नाहमत्र भोग्यं पश्यामि** उसने तो सुना है कि ज्ञान होनेपर कुछ अप्रिय नहीं रहता। सभी लोकों और सभी कामनाओंकी प्राप्ति हो जाती है। फिर उसके लिए प्रजापति निर्विशेष ब्रह्मका उपदेश क्यों करते हैं? इसका समाधान लीजिये। आपका कहना ठीक है! इन्द्र अपनेको, सर्वभूतोंको जानना चाहता है। वह जानता है कि लोक और कामभोग मुझसे पृथक् हैं। जिस ज्ञानसे वे सब प्राप्त हो जाते हैं वह ज्ञान मुझे चाहिए। परन्तु प्रजापति सद्‌गुरु हैं। इन्द्र जो समझता और चाहता है उसीमें उसका हित नहीं है। प्रजापति उसके लिए जो परमहित है उसीका उपदेश करते हैं। आत्मा आकाशके समान अशरीर है। वह सर्वभूत, सर्वलोक और सर्वकामकी आत्मा है। उसकी प्राप्ति पूर्णहितकी प्राप्ति है। प्रजापति इसी अभिप्रायसे इन्द्रको उपदेश कर रहे हैं। जैसे एक राजाको राज्यकी प्राप्ति होती है वैसे आत्मज्ञानकी अन्यरूपसे लोक एवं भोगकी प्राप्ति नहीं होती। श्रुति स्पष्ट कहती है कि कौन किसके द्वारा किसको जानेगा, अर्थात् आत्मामें ज्ञाता, ज्ञान-करण और ज्ञेयकी त्रिपुटी नहीं है। फिर यह भूत और इनका ज्ञाता मैं, ऐसा उपदेश कैसे होगा?

परन्तु मूल समस्या तो यह है, कि श्रुतियोंने ही कहा कि ज्ञानी पुरुष खाता हुआ, खेलता हुआ, स्त्रियोंके साथ रहता हुआ, वाहनोंपर चलता हुआ भी मुक्त ही रहता है, उसके संकल्प पूरे होते हैं, वह अनेक रूप हो सकता है, इत्यादि ऐश्वर्य प्रतिपादक श्रुतियोंकी संगति कैसे बैठायी जाय? इस समस्याका समाधान यह है कि सर्वात्माका सब फलोंके साथ सम्बन्ध युक्तियुक्त ही है। जैसे सभी घड़े, करवे और कुण्डे मृत्तिकासे प्राप्त ही हैं; वैसे ही सर्वात्माको सब कुछ प्राप्त ही है। अच्छा जी! तब तो फिर सब दुःख भी प्राप्त ही हैं? होने दो। वे भी तो अपने आत्मा ही हैं, उनसे क्या विरोध है? वस्तुतः दुःख आत्मामें अविद्यासे कल्पित हैं। जैसे कल्पनानिमित्तक सर्प रज्जुमें होता है वैसे अविद्या ही निवृत्त हो गई तो दुःखका कारण ही निवृत्त हो गया, अब दुःख सम्बन्ध कहाँ है? दुःख जीवकी सृष्टि है। यह ईश्वर सृष्टि नहीं है। शुद्ध-सत्त्वकी उपाधिके द्वारा ईश्वर ही मानस-भोगोंकी सृष्टि और सबके शरीरमें रहकर उपभोग करता है। अविद्याकृत सारी कल्पना-जल्पना-का विषय भी आत्मा-परमात्मा ही है, दूसरा कोई नहीं—यह वेदान्तका सिद्धान्त है। [प्रजापतिको करना था ब्रह्मोपदेश परन्तु उन्होंने छायात्मा,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वप्नात्मा और सुषुप्तात्माका उपदेश किया, इसका क्या प्रयोजन है ? यदि प्रजापति पहले ही परमात्माका उपदेश करते तो बाह्यविषयासक्त पुरुषके लिए उस दुर्विज्ञेय, अत्यन्त सूक्ष्म वस्तुको समझनेमें व्यामोह होनेकी सम्भावना थी। अतः क्रम-क्रमसे वस्तुका साक्षात्कार कराया। जैसे कोई द्वितीयाके चन्द्रमाको दिखाना चाहे और उँगली उठाकर दिखावे देखो ! यह है चन्द्रमा, फिर पर्वतका शिखर दिखावे, वृक्षकी शाखा दिखावे इसी प्रकार प्रजापति धीरे-धीरे आत्म-दर्शन कराते हैं। वह चतुर्थ उपदेशमें परिच्छिन्न, त्रिविध शरीरसे ऊपर उठकर, अपनेको अशरीर ज्योतिस्वरूप जान लेता है। इसी उत्तम पुरुषमें भोजन, क्रीड़ा, रमण सब कुछ होता है। यह उत्तम पुरुष' है। यह भी तो ध्यान दीजिये कि सभी अवस्थाओंका वर्णन करते समय प्रजापति आत्माको अभय, अमृत ब्रह्म कहते हैं। प्रजापति-का वेश धारण करके श्रुति ही बोल रही है। वह सर्वथा सत्य ही है, उसे कुतर्कके द्वारा मिथ्या नहीं किया जा सकता क्योंकि श्रुतिसे बढ़कर और कोई प्रमाण नहीं है। परन्तु यह दुःख है, यह अप्रिय है, यह भी प्रत्यक्ष ज्ञात होता है। हांने दो जैसे व्यवहार कालमें यह जाननेपर भी कि मैं अब अजर, अमर हूँ, यह प्रत्यक्ष मालूम पड़ता है कि मैं बूढ़ा हो गया। अमुक पितासे मेरा जन्म हुआ, मैं गोरा-काला हूँ, सुख-दुःखादि उपाधिके धर्म हैं। आभास-धर्म यथार्थ-धर्मके बाधक नहीं हैं।

श्रुतिने जो कुछ कहा है वह सर्वथा सत्य है फिर भी अभी इसका अनुभव बहुत कठिन है। देवराज इन्द्र भी अपनेको न जानकर कहते हैं कि सुषुप्ति अवस्थामें तो विनाश ही है। दैत्योंके राजा बुद्धिमान् विरोचन भी देहमात्रको ही आत्मा समझकर लौट गये। इन्द्रने जिसे विनाश भयसागरके रूपमें देखा था, उसीमें बौद्ध डूबकर रह गये कि शून्य ही है। सांख्योंने देहादिसे विलक्षण द्रष्टाको जाना, फिर भी श्रुति-प्रामाण्यका परित्याग कर देनेके कारण द्वैतके दर्शनमें ही रह गये। जहाँ द्वैत है वहाँ मृत्यु है। वैशेषिक न्याय आदि दार्शनिकोंने ऐसा समझ लिया कि आत्मद्रव्यमें नौ गुणोंका रंग लगा हुआ है, उसे धो-पोंछकर साफ करना चाहिए। कर्मकाण्डियोंका चित्त भी बाह्यविषयोंने हर लिया है, वे वेदको प्रमाण मानते हैं तो भी परमार्थसत्य ब्रह्मात्मैक्यको विनाशके समान मान बैठते हैं और ऊपर-नीचे गमनागमनके चक्करमें भटकते रहते हैं। ऐसी स्थितिमें दूसरे क्षुद्र प्राणी यदि इस ब्रह्मात्म-एकत्वको अनुभव नहीं कर पाते तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

संसारमें कितनी ही वस्तुएँ ऐसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होती हैं, वायु, मेघ, विद्युत् गर्जना आदि जो पहले अशरीर होते हैं, बीचमें शरीरधारी सदृश होकर चमकते हैं परन्तु पुनः अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो जाते हैं। इसी प्रकार यह आत्मदेव जब देहाभिमानसे मुक्त हो जाते हैं तब परमात्मासे एक होकर अपने स्वरूपमें स्थित हो जाते हैं। यही यह पुरुष उत्तमपुरुषकी संज्ञा प्राप्त करता है। अब उसका शरीर क्या कर रहा है, कहाँ है, खाना, खेलना, स्त्रियोंमें, वाहनोंमें, लोगोंमें रहना, इन सब बातोंपर उसका ध्यान नहीं जाता है। मन कहीं जाये, तन कहीं जाये, वह ब्रह्म है, उसको शरीर और मनको कहीं रखनेके कर्त्तव्यसे कोई प्रयोजन नहीं है। जैसे घोड़े या बैल को रथ या बैलगाड़ीमें जोड़ देते हैं उसी प्रकार इस शरीरमें पञ्चवृत्तिप्राण जोड़ दिया गया है। उसमें मन, इन्द्रिय और बुद्धि रहते हैं। वह विज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिसे एक हो गया है। जबतक उनके पूर्वकर्मोंका फल है, तबतक उसको प्राप्त करता रहता है। उसी प्रमाताका एक देश है नेत्रेन्द्रिय, जिससे रूपकी उपलब्धि होती है। इसमें जो काली पुतली है—तारा है, उसका आकाश आत्मासे अभिन्न है। वही देखता है, सूंघता है, बोलता है, सुनता है, मनन करता है। मन ही दिव्य-दृष्टि है। इसीके द्वारा वह सारे लोक और भोगोंको भोग लेता है। इन्हीं उपाधियोंमें जो ज्ञाता है वह इनसे विलक्षण, साक्षात् अद्वितीय ब्रह्म है। उसमें द्वैतात्मक प्रपञ्च बिना हुए ही आभासमात्र प्रतीत हो रहा है। प्रजापतिने इन्द्रको इसी द्रष्टाको पुनः पुनः अमृत, अभय ब्रह्म बताकर अपने उपदेशका उपसंहार किया।

अब एक बार सिंहावलोकन करें। आरुणि-उद्दालक एवं श्वेतकेतु दोनों पिता-पुत्र इसी धरतीके निवासी मनुष्य हैं। वंश उत्तम, पिता ज्ञानी, बाल्यावस्थासे ही संस्कार सम्पन्न वेदोंका पारगामी, विद्याका अभिमान लेकर लौटा था, पिताने एक विज्ञानसे सर्वविज्ञानकी अद्भुत विद्याका उपदेश किया और उससे जगत्के मूल सद्वस्तु-का उपदेश करके आत्मा-परमात्मा, जगत्के रहस्यका साक्षात्कार करा दिया। सद्वस्तुसे प्रपंचकी उत्पत्ति स्थिति-प्रलयका आरोप करके यह निश्चय करा दिया कि, मृत्तिका सुवर्ण और लौहके समान सद्वस्तु ही सत्य-तत्त्व है, विकार मिथ्या है। श्वेतकेतु नामधारी मनुष्यके शरीरसे अवच्छिन्न जो चेतन है—वही ब्रह्म है, सद्वस्तु है, अद्वितीय है। यह अपूर्व वैदुष्य प्राप्त हुआ श्वेतकेतुको एक विज्ञानसे सर्वविज्ञान। अज्ञान और उसके कार्य अभिमानकी निवृत्ति हो गयी। वह गृहस्थ पिताके पुत्रके रूपमें गृहस्थ ही रहकर जीवन्मुक्तिके विलक्षण सुखका भागी बना। यह है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मविद्याकी महिमा।

ऋषिलोकमें निवास करते हैं परमर्षि सनत्कुमार एवं देवर्षि नारद। दोनों ब्रह्माके मानसपुत्र हैं सदाचारी विद्वान्। देवर्षि नारदने समस्त वेद-शास्त्रोंका अधिगम प्राप्त कर लिया है परन्तु उनके शोक-तमकी निवृत्ति नहीं हुई है। वे स्वयं विरक्त विवेकी हैं, कोई अभिमान नहीं है, उनकी बुद्धिके सारे रंग जो ज्ञानको उपरत कर देते हैं, पहले ही उपमर्दित हो चुके हैं। उन्होंने जिज्ञासुभावसे सनत्कुमारकी शरण ली और सनत्कुमारने उन्हें ब्रह्मविद्याका उपदेश किया।

यह ध्यान देने योग्य है कि आरुणिने श्वेतकेतुको सद्वस्तुमें सृष्टिके उदयक्रमसे उपदेश किया था। वह अन्तरंगसे बहिरंगकी ओर किस प्रकार अग्रसर होती है, परन्तु सनत्कुमारने नारदको ऐसा उपदेश किया जिसमें बहिरंगसे अन्तरङ्गकी ओर विवेककी गति होती है। नामसे लेकर आशा पर्यन्त क्रमशः अन्तरङ्ग तत्त्वोंका वर्णन है। आशा मानसी-वृत्ति है, उससे अन्तरङ्ग प्राण है, प्राण शोक-रहित भी है। नारदको इस अन्तरङ्ग प्राणके उपदेशसे सन्तोष हो गया था, परन्तु सनत्कुमारने करुणापूर्वक उनको समझाया कि यह प्राण अनृत है, मिथ्या है। इसमें जड़ता है, गमनागमन है। इसमें जो शोककी निवृत्ति है वह भी भ्रमात्मक ही है। अतः तुम सत्यात्माका अनुसन्धान करो। उन्होंने सत्यात्माका वहके रूपमें वर्णन करके फिर मैं के रूपमें उपदेश किया। उसीको फिर आत्मा कहा। वह मैं और आत्मा एक ही पदार्थ है और वह पूर्ण है। जहाँ आरुणिकी ब्रह्मविद्या विवेककी प्रधानतासे है, वहाँ सनत्कुमारकी भूमविद्या-आनन्द ब्रह्मविद्या कुछ साधन-संस्कारसे भी युक्त है। उसमें आहारशुद्धि, संयम-निष्ठा श्रद्धा-मनन और विज्ञानका भी उपदेश है। इस ब्रह्मविद्यासे नारदके शोक-मोहकी निवृत्ति हो गयी, वे परमानन्दमें मग्न हो गये।

सबसे अद्भुत है दक्षिणाक्षिपुरुष-विद्या। पहली सद्विद्या है, दूसरी आनन्दविद्या है और तीसरी चिद्विद्या है। प्रजापतिने इन्द्रको इसीका उपदेश किया है। इन्द्र-विरोचनकी जिज्ञासा पारमैश्वर्य एवं परम स्वातन्त्र्यकी प्राप्तिके लिए उदय हुई। वे सत्यसंकल्प सत्यकाम होनेके लिए प्रजापतिके पास आये थे। वे समझते थे, कि यदि हमें ज्ञान हो जायेगा तो हम स्वच्छन्द, उन्मुक्त जीवन व्यतीत कर सकेंगे। पाप, जरा, मृत्यु, भय, शोक हमें नहीं व्यापेंगे। प्रजापतिका लोक ब्रह्मलोक है। देवता इन्द्र और दैत्य विरोचन दोनों ही उनकी सन्तान हैं। विरोचनमें अपने पूर्व-ऐश्वर्य भोग-सुखके लिए उत्सुकता थी, वह ठीक-ठीक तत्त्वज्ञान प्राप्त किये बिना ही देहाभिमानी होकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लौट गया। परन्तु इन्द्रने धीर-गम्भीर रहकर ब्रह्मचर्य-पालनके द्वारा बत्तीस बरसमें जाग्रत्-पुरुषको, बत्तीस बरसमें स्वप्नपुरुषको एवं बत्तीस बरसमें सुषुप्त-पुरुषको समझा। जैसे श्वेतकेतु अन्तरंगसे बहिरंगकी ओर नारद बहिरंगसे अन्तरंगकी ओर विवेक पुरस्सर तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेमें समर्थ हुए थे, वैसे ही इन्द्रने उत्पत्ति-प्रलय या भूत-भविष्यका विवेक किये बिना ही वर्तमानमें अनुभूयमान अवस्थाओंके द्वारा ही तीनोंमें अनुगत, संतत एक पुरुषको पहचाना था। जाग्रत् सृष्टि समष्टि है, स्वप्न-सृष्टि भी समष्टि ही है। सुषुप्तिमें दोनोंका बीज है परन्तु दोनोंका भान नहीं होता। पुरुष-पुरुष एक ही चेतन है, वही दक्षिणाक्षि द्वारा उपलक्षित है। विचार करके देखें तो ज्ञात होगा कि अत्यन्त अबाध्य होनेके कारण चिद्वस्तु ही सत् है। सर्वरूपमें स्फुरणशील होनेके कारण सद्वस्तु ही चित् है और सर्वविध उपद्रवसे मुक्त होनेके कारण सत्-चित् ही आनन्द है। यदि यह सच्चिदानन्दसे आत्मासे अभिन्न नहीं होंगे तो इनका अपरोक्ष-साक्षात्कार कभी नहीं हो सकेगा, परोक्ष ही रह जायेंगे, केवल कल्पनामात्र ही होंगे। यदि सच्चिदानन्दसे आत्मा अभिन्न नहीं होगा तो वह असत्, जड़ और दुःखरूप होगा। आत्माका मिथ्या होना या जड़ होना सर्वथा अनुभवविरुद्ध है। इसकी परम-प्रेमास्पदता भी अनुभवगोचर ही है। अतएव यह परमानन्द है। कभी कोई यह अनुभव नहीं कर सकता कि मैं नहीं हूँ, मैं अज्ञान हूँ या मैं अप्रिय हूँ। अनुभवकी कक्षामें ये तीनों बातें कभी आरूढ़ नहीं हो सकतीं। देशकालका आदि-अन्त बाह्यरूपमें सर्वदा अज्ञात ही रहेगा। उनकी गोदमें निरन्तर बनती-बिगड़ती वस्तुएँ भी उनका आदि-अन्त संख्या भी अज्ञात ही रहेंगे। यह सारी सृष्टि अपने स्वरूपके अज्ञानसे ही पृथक् सत्यके रूपमें प्रतीत हो रही है। आत्मा अद्वितीय है, ब्रह्म है। यही अमृत, मृत्यु और उसकी कल्पनासे मुक्त है। क्योंकि इसका कभी अभाव न था, न है, न होगा। इसके अभावकी कल्पना ही हो सकती है, अनुभव नहीं। यह अभय है। जब दूसरा कोई है ही नहीं, दूसरा कुछ है ही नहीं, तब भय किससे ? यह आत्मा ही ब्रह्म है—एतद् ब्रह्म। प्रजापतिके उपदेशसे इन्द्रका अज्ञान दूर हो गया और वह ऐश्वर्य-अनैश्वर्य-जाग्रत-सुषुप्ति, कर्म-अकर्म, सृष्टि-प्रलयमें एकरस हो गया। अब किसी भी अवस्था, स्थिति, वस्तुओंके गमनागमन, क्रिया-विक्रिया,' फलाफलमें वह अपने स्वरूपसे प्रच्युत नहीं हो सकता था।

इन तीनों आख्यायिकाओंसे ब्रह्मविद्याका निरुत्तर एवं निरतिशय उत्कर्ष सिद्ध होता है। ●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रजातन्त्रमें सत्याग्रहकी उपयोगिता

श्री छोटेलाल त्रिपाठी, प्रवक्ता (दर्शन विभाग)

प्रयाग विश्वविद्यालय (इलाहाबाद)

अन्तरात्माके आधारपर सत्याग्रह

अन्तरात्माको सत्याग्रह का सर्वोत्तम आधार माना जाता है। यहाँ सत्याग्रही अपने हृदयके अन्दर एक आवाज सुनता है जिसे वह किसी कार्यको करने या उससे विरत रहनेका दैवी आदेश मानता है। इस दैवी आदेशका पालन करनेके लिए वह राज्यके मानव निर्मित विधानोंका उल्लंघन करता है। किन्तु उसका लक्ष्य विधानको भंग करना नहीं अपितु प्रभुके सर्वोच्च आदेशके अनुरूप उसमें संशोधन करना है। यहाँ उसका व्यवहार एक साधारण अपराधीका-सा नहीं होता जो चुपकेसे कानूनका उल्लंघन करता है और यह भी प्रयत्न करता है कि उसे उस कानूनके उल्लंघनके लिए निर्धारित दण्ड न मिले। इसके विपरीत वह उस कानूनके उल्लंघनके लिए निर्धारित बड़े-से-बड़े दण्डको सहर्ष भुगतनेके लिए तैयार रहता है।

अन्तरात्माके दो रूप हैं—

(१) परम्परागत अन्तरात्मा और

(२) समीक्षात्मक अन्तरात्मा।

परम्परागत अन्तरात्मा कुछ लोगोंकी यह धारणा है कि यह शरीरके अन्दर विराजमान एक विशेष प्रकारकी ध्वनि है अथवा हृदयमें (रूपकात्मक रूपसे) विराजमान एक विशेष प्रकारकी भावना है जो यह आदेश देती है कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए[1]। इस सिद्धान्तके अनुसार व्यक्ति यह जानते हुए भी कि उसके पास किसी वस्तु विशेषमें विश्वास करनेके लिए कोई तार्किक आधार नहीं अथवा अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिए कोई बौद्धिक आधार नहीं है फिर भी वह कहता है कि वह उसका उल्लंघन नहीं करेगा क्योंकि उसकी अन्तरात्मा वैसा नहीं कहती[2]। गार्नेटके शब्दोंमें वह कह सकता है कि यद्यपि इस प्रतिज्ञाके उल्लंघनके पक्षमें मेरे पास प्रबल नैतिक तर्क हैं और इसे पालन

१. डेमोक्रेसी एण्ड नॉन वाइलेंस पृ० १३१

२. थोरो वेदिउ—सिविल डिसोबिडिएंस पृ० ३५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करनेके पक्षमें बहुत ही कमजोर नैतिक तर्क हैं फिर भी मेरा अन्तरात्मा यह कहती है कि इस प्रतिज्ञाका उल्लंघन अनुचित है[1]। इस अर्थमें अन्तरात्मा अन्धविश्वासके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अतः दार्शनिक विवेचनके लिए इसका तनिक भी महत्त्व नहीं।

समीक्षात्मक अन्तरात्मा

यह वह अन्तरात्मा है जहाँ सत्याग्रही अन्धविश्वास पूर्ण ढंगसे किसी भी बातमें विश्वास नहीं करता और न तो धन, पद अथवा कीर्तिकी स्वार्थपूर्ण भावनाओंसे प्रेरित होता है। वह सभी प्रासंगिक नैतिक तथ्यों-का बौद्धिक विवेचन करनेके अनन्तर एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचता है वह किसी विषयके सम्बन्धमें एक निश्चित मत निर्धारित करते समय समस्त प्रचलित नैतिक मानदण्डों और परम्परागत अन्तरात्माके आदेशों पर भी विचार करता है। सुकरात, ईसामसीह, थोरो, गांधी, मार्टिन लूथर किंग जैसे महान् व्यक्तियोंने अन्तरा-त्माको इस अर्थमें बहुत ही अधिक महत्त्व दिया है। सुकरात कहते हैं—हे प्रिय क्रीतो! जिस प्रकार एक रहस्यवादी अपने कानोंमें बाँसुरीकी ध्वनि सुनता है उसी प्रकार मैं इस ध्वनिको निरन्तर सुन रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि इस सम्बन्धमें तुम जो कुछ कहोगे और जितना कहोगे वह सब व्यर्थ होगा—अतः मुझे ईश्वरकी इच्छाको पूरी करने और उसका अनुसरण करनेके लिए छोड़ दो देखें वह कहाँ ले जाती है[2]। वे फिर कहते हैं हे एथेंस वासियो! मैं आपका सर्वाधिक सम्मान करता हूँ। मेरे हृदयमें आपके लिए सर्वाधिक प्रेम है। फिर भी मैं आप लोगोंके आदेशकी अपेक्षा ईश्वरके आदेशका पालन करूँगा और जबतक मेरे शरीरमें प्राण हैं मैं दर्शनकी शिक्षा और आचरणसे विरत नहीं हूँगा[3]। इसी प्रकार जब ईसामसीह पर यहूदी विधानके उल्लंघनका आरोप लगाया गया था तो उन्होंने घोषणा की थी कि मैं विधानका उल्लंघन करने नहीं अपितु उसे पूरा करने आया हूँ। किन्तु यह कार्य विधानके शब्दके उल्लंघनसे ही सम्भव है उसके अनु-सरणसे नहीं। मेरे ऐसा करनेसे यद्यपि विधानके शब्दकी हत्या हो रही है किन्तु उसकी अन्तरात्मा अथवा दूसरे शब्दोंमें उसमें व्याप्त अन्तरात्माकी रक्षा हो रही है।

इसी प्रकार थोरोने भी कहा कि 'नागरिकोंको एक क्षणके लिए स्वल्प

१. डिमोक्रेसी एण्ड डिसोबिडिएंस पृ० ६१
२. क्रीतो-प्लेटोकी एक कृतिका नाम है जिसमें उन्होंने सुकरातकी मृत्युका वर्णन किया है
३. डिमोक्रेसी एण्ड नॉन वाइलेंस पृ० १३७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मात्रामें भी अपनी अन्तरात्माको विधान निर्माताओंके पास गिरवी नहीं रखना चाहिए। वह राज्य जहाँकी सरकार किसी व्यक्तिको अन्यायपूर्ण ढंगसे जेलमें डालती है वहाँ न्यायप्रिय व्यक्तियोंका वास्तविक स्थान जेल ही हैं[1]। गाँधीजीने भी व्यक्तिकी अन्तरात्मा पर इसी अर्थमें बल दिया है। वह कहते हैं—जब डेनियलन मेडीज और ईरानके उन कानूनोंका उल्लंघन किया जो उसकी अन्तरात्माको कष्ट दे रहे थे और उनके उल्लंघनके लिए निर्धारित दण्डका चुपचाप सहन किया तो वे वस्तुतः सत्याग्रह कर रहे थे। सुकरातने जिस चीजको सत्य समझा उसके प्रचारसे विरत नहीं हुए और वीरतापूर्वक मृत्युका वरण किये[2]।

समीक्षा—अन्तरात्माके आधारपर किया गया सत्याग्रह भी नैतिक आधारपर किये गये सत्याग्रहकी ही कोटिमें आता है किन्तु इसमें और अन्य नैतिक आधारोंपर किये गये सत्याग्रहोंमें कुछ मौलिक भेद हैं जो निम्नलिखित हैं—

यहाँ कानूनका उल्लंघन करते समय सत्याग्रहीका लक्ष्य बहुमतके निर्णयमें परिवर्तन लानेके लिए उसपर दबाव डालना नहीं और न अपने दृष्टिकोणका प्रचार करना ही है। वह उस निर्णयपर पुनर्विचारके लिए अथवा उस निर्णयके विरुद्ध अपील करनेके लिए भी सत्याग्रह नहीं करता। उसका लक्ष्यमात्र यह है कि वह उस निर्णयका भागीदार नहीं बनना चाहता जिसे वह अन्यायपूर्ण और अनैतिक समझता है। थोरोके शब्दमें वह मात्र यह कहता है कि मैं उस दोषका दोषी नहीं बनना चाहता जिसकी मैं भर्त्सना करता हूं[3]। पुनश्च उसका सत्याग्रह अल्पकालिक अथवा औपाधिक भी नहीं है। वह कानूनके पालनके लिए शर्तें नहीं रख रहा है और न उस कानूनको माननेके लिए तैयार है भले ही उसके मतका व्यापक प्रचार किया जाये, उसे गम्भीरता पूर्वक सुना जाये अथवा पूर्व निर्णयपर पुनः विचार किया जाए[4]।

अतः उपर्युक्त विवेचनके आधारपर हम यह निष्कर्ष आसानीसे निकाल सकते हैं कि जबतक हम किसी ऐसे परिशुद्ध और पूर्ण प्रजातन्त्रकी स्थापना नहीं करते जहाँ प्रत्येक कार्य सर्वसम्मतिसे और सबके हितके लिए होता है वहाँ हमें प्रायः सत्याग्रह करना पड़ेगा और यह अपने

---

१. सिविल डिसो बिडिएस पृ० ३५
२. डेमोक्रेसी एण्ड नॉन वाइलेंस पृ० १३१
३. थोरो—बेदिउ सिविल डिसोबिडिएंस पृ० ३५
४. डिमोक्रेसी एण्ड डिसोबिडिएंस पृ० ६७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूलरूपमें न तो सरकारके लिए हानिकारक होगा और न समाजके लिए। अन्ततोगत्वा यह समाजके लिए लाभप्रद ही सिद्ध होगा हानिकर नहीं। इतिहाससे ऐसे सैकड़ों उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जहाँ सत्याग्रहके कारण काले कानूनों-के स्थानपर अच्छे कानूनोंका सृजन किया गया। स्वामी दयानन्द, विवेकानन्द, गांधी, सुभाष, लोहिया और जयप्रकाश जैसे हमारे आधुनिक धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक नेता किसी-न-किसी रूपमें कानूनके उल्लंघनकर्ता थे। एक और अधिक न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्थाकी स्थापनाके लिए उन्हें कठोर यातनाएँ सहनी पड़ी और उनमेंसे कुछको तो अपने जीवनसे भी हाथ धोना पड़ा।

●

—उरहार—

जो फूल सुरभि का उपवन में,
कुछ भी करते संचार नहीं।
उन फूलोंपर आकर भौंरे,
करते हैं कभी गुंजार नहीं॥
उनका गुलाब जैसा जग में,
सम्मान कहाँ कब हो सकता ?
जो काँटो में पलकर अपना,
कर सकते हैं श्रृंगार नहीं॥
गर्मी-सर्दी-वर्षा-आँधी-अन्धड़-
में जो मुसका न सके।
उनको तो स्नेहिल-नयनोंका,
मिल सकता कुछ भी प्यार नहीं॥
तज गेह स्वयं, बिंध सूचीसे,
जो एक सूत्र में बंध न सके।
'मधुरेश' कभी इस दुनिया में,
वह हो सकता उरहार नहीं॥

—भानुदत्त शास्त्री 'मधुरेश'

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्मोल्लासः

टीकाकार—श्री 'विष्णु'

(पूर्वानुवृत्त)

: ५ :

आत्मामें दिशाका मिथ्यात्व

पौर्वापर्यपरस्परां न सहते स्थानञ्च नालम्बते
किञ्चिद्रूपमकृत्रिमं न भजते धत्ते समं सर्वतः।
संविद्रश्मितरङ्गसम्भृतवपुः पुष्णाति लोकत्रयं
केयं दिङ् मयि चाकसीति पुरतो मायेव सम्मोहनी ॥

कहाँ पूर्व और कहाँ पश्चिम—इस मर्यादाको धारण नहीं करती। किसी स्थानका आश्रय नहीं लेती। इसका कोई सहज रूप नहीं है। सब ओर से धारण करती है। संवित्की रश्मि तरंगोंसे अपना शरीर बनाती है। तीनों लोकोंको धारण करती है। यह कौन है? यह है दिशा। मेरे ही सम्मुख मुझमें ही भास रही है। यह दिशा क्या है? मुझमें प्रतीतिमात्र सम्मोहनी माया।

आत्मतरङ्गिणी टीका

अब महाराजश्री अपने पूर्वकथित इस अनुभवका विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं कि 'जो कुछ मेरे सम्मुख भास रहा है वह मुझ संविद्का ही उल्लसित निर्मल रूप है। इस पंचम उल्लासमें दिक्तत्त्वका संविद्से अभिन्न स्वरूप प्रतिपादित किया जा रहा है।

इस दिक्तत्त्वका स्वरूप क्या है? दिक्तत्त्व वह है जिसमें पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण दिशाएँ प्रतीत होती हैं। जिसमें स्थान (देश) की कल्पना होती है। जिसके कारण लम्बाई-चौड़ाई-ऊँचाईका, दूरी-पासका, ऊँचे-नीचेका, दैर्घ्य-विस्तारका भान होता है। जिसमें आकाशके विस्तारकी कल्पना होती है।

परन्तु यह तो साधारण ज्ञान है कि पूर्व-पश्चिमादि दिशाएँ सापेक्ष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही हैं। आमने-सामने खड़े दो व्यक्तियोंको दिशाओंका ज्ञान परस्पर विपरीत होगा तथा दो विभिन्न देशोंमें भी दिशाओंका ज्ञान समान नहीं होगा। दिशाएँ व्यवहार्य हैं और जिस आकाशमें इनकी प्रतीति होती है उसमें ये स्वरूपतः कल्पित हैं। स्वयं स्थानकी कल्पना भी आकाशमें ही होती है और आकाशमें विशेष स्थानकी स्थिति व्यवहार-मात्र है। यह आकाश स्वयं जिस तत्त्वमें कल्पित है वह है दिक्तत्त्व। यह हुआ दिक्तत्त्वका तटस्थ लक्षण।

दिक्तत्त्वका स्वरूप लक्षण क्या है। अब इसे निषेध-पद्धतिसे समझाते हैं। उस दिक्तत्त्वमें व्यवहारके लिए कल्पित पूर्व-पश्चिमादिकी दृढ़ मर्यादा नहीं है। जो यहाँ पूर्व है वहाँ पश्चिम हो जाता है। जो मेरे लिए इस मुद्रा-विशेषमें पूर्व है वही दूसरी मुद्रामें पश्चिम हो जाता है। दिक्तत्त्वमें पूर्व और पश्चिमकी मर्यादा नहीं है : पौर्वापर्यपरम्परां न सहते।

दिक्तत्त्व किसी स्थानका आश्रय नहीं लेता : स्थानञ्च नालम्बते। स्थानकी परिकल्पना दिक्में होती है, दिक् कोई स्थान-विशेष नहीं है।

तब आकाशका नाम दिक्तत्त्व होगा ? यह नेत्रोंके सामने अनन्त विस्तारको प्राप्त पोलरूप आकाश जिसमें ही स्थान-विशेष और दिशा-विशेषका अनुभव होता है क्या यही दिक्तत्त्व है ? नहीं, आकाश भी उसका उपलक्षणमात्र ही है।

धत्ते समं सर्वतः—सब ओरसे धारण करना उसका स्वभाव है। यही आकाशका भी स्वभाव है।

आकाशो वै नामरूपयोर्निर्वहिता : छान्दोग्य ८. १४. १

आकाश नाम उसका है जिसमें नामरूपका प्राकट्य होता है।

इस दिक्तत्त्वका कोई सहजरूप नहीं है। (किंचित् रूपम् अकृत्रिमम् न भजते)। आकाश उसके निकट है परन्तु इस दृश्य आकाशकी स्थूलता, जड़ता उसमें नहीं है। इस दिक्तत्त्वके शरीरका उपादान शून्य नहीं संविद् ही है।

संविद्-रश्मि-तरंग-सम्भृतवपुः—इस दिक्तत्त्वका शरीर आत्माकी ज्ञान-रश्मियोंकी तरंगोंसे उत्पन्न होता है। संवित्की रश्मि तो संविद् ही है। उसमें अनादिकालीन संस्कार-परम्पराके कारण जो संविद्रश्मि-समूहका वक्रीभवनको प्राप्त दिग्बोध है वही दिक्तत्त्व है। आकाशकी परिकल्पना भी उसी बोधका साकार रूप है। और वही आकाशमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नामरूपका व्याकरण करता है। असलमें यही तीनों लोकों—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिके तथा भूः, भुवः, स्वःके समस्त नामरूपोंका पोषण करता है : पुष्णाति लोकत्रयम्। पोषणका अर्थ है कि वही लोकत्रयका उपादान है। ये लोकत्रय आकाशमें भासते हैं और आकाश उस दिक्-तत्त्वका मूर्तरूप है जिसका उपादान स्वयं चित् है।

छान्दोग्यकी श्रुति कहती है :

आकाशो वै नाम नामरूपयोर्निर्वहिता ते यदन्तरा तद्ब्रह्म तदमृतं स आत्मा : छान्दोग्य ८. १४. १

आकाश उसका नाम है जिसमें नामरूपका प्राकट्य होता है। जो इनसे आन्तर है वह ब्रह्म है। वही अमृत है और वही आत्मा है।

यह चिदात्मा मैं ही हूँ जिसमें दिक्तत्त्व अर्थात् देशज्ञान, दिशाज्ञान आकाशरूप मूर्त होकर मेरे सम्मुख भास रहा है।

मयि आत्मनि इयं दिक् पुरतः चाकसीति

आत्मामें दिक् क्यों भासती है ? तो कहा : मायेव सम्मोहनी। यह मुझमें प्रतीतिमात्र सम्मोहिनी माया है।'

इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते

इन्द्र अर्थात् परमात्मा मायासे अनेकरूप प्रतीत होता है।

'माया' शब्द वैदिक वाङ्मयमें अनेकता, विविधताके कारणके अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। बादमें वह ईश्वरकी सर्वतन्त्रस्वतन्त्र अथवा कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम् शक्तिके अर्थमें प्रचलित हो गया। वह शक्ति ही ईश्वर है—यह शाक्तमत है। शक्ति ईश्वरके अधीन है, यह अन्य आस्तिक मतोंमें स्वीकृत है। परन्तु माधुर्य रस प्रधान सम्प्रदायोंमें ईश्वरको ही शक्ति-अधीन मानते हैं। परन्तु वेदान्तमें शक्ति ज्ञानका ही विवर्तमानरूप है।

चित्में स्वतन्त्र इच्छाशक्ति ही माया है। जैसे परमात्माके अद्वितीय सत्स्वरूपमें अनेक वीज धारण करनेकी योग्यता है उसी प्रकार परमात्माके चित्स्वरूपमें उन बीजात्मक अथवा अंकुरात्मक विविधताओंको संवेत्तारूपसे प्रकाशित करनेकी योग्यता है। सर्वाधिष्ठानत्व एवं सर्वावभासकतारूप योग्यता परमात्माके आनन्दस्वरूपमें उल्लास लानेके हेतुसे (अथवा 'लीला'के लिए—लीकवत्तु लीलाकैवल्यम्) इस दिक्, काल और द्रव्यके रूपमें क्रियान्वित होती है। यही परमात्माकी स्वरूपगत माया है जो उसे नानारूपोंमें दिखाती है। यहाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'सम्मोहनी' पदका अर्थ नानारूपोंमें, अन्यथारूपोंमें प्रकट करनेवाली आत्मशक्तिसे है।

परन्तु यह अनेकता प्रातीतिक है, दृश्य है। अतः संवेत्तासे इसका अभेद है। यह सर्वथा पृथक् या सर्वथा सत्य नहीं है। उपनिषदोंमें नानात्व एवं भेद-दर्शनकी सर्वत्र निन्दा की गयी है। उदाहरणार्थ :

मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति। कठ०२. १. १०

नेह नानास्ति किंचन। कठ० २. १. ११

द्वितीयाद्वै भयं भवति। वृहदारण्यकोपनिषद्

अज्ञानीके लिए आत्मामें माया और उसके कार्य सत्य हैं। जिज्ञासुके लिए माया सत्त्वासत्त्वाभ्याम् अनिवर्चनीय है। मुमुक्षुके लिए माया भयावह है। बोधवान्के लिए आत्मामें मायाका अत्यन्ताभाव है। जीवन्मुक्तके लिए माया आत्माका उल्लास है। आत्मैवेदं सर्वम्—यह उपनिषद्मन्त्र विना बाध-प्रक्रियाके जीवन्मुक्तिको दृष्टि है।

महाराजश्री कहते हैं कि यह दिक्तत्त्व मुझ आत्मामें अनेकताका उल्लास है। यह दिशा मेरी संविद्रश्मियोंसे उत्पन्न मेरी प्रिय पुत्री दिशा देवी है।

केयं दिङ् मयि चाकसीति पुरतो मायेव सम्मोहनी। ●

पत्रोत्तर

प्रिय आचार्य डॉ० देव, ९-७-७७

सप्रेम नारायणस्मरण!

आपके अन्तर्देशके सूक्ष्मतम प्रदेशमें एक महापुरुष विराजमान है। आप उसको प्रकट होनेका अवसर दीजिये। आप उस महत्तामें प्रतिष्ठित हो जाइये जो वस्तुतः आपका स्वरूप है। जब आप वाह्य क्षुल्लक पदार्थोंके सम्बन्धमें आग्रह नहीं रखेंगे, तो उस महिमामय प्रकाश की चमक उसकी छवि-छटा सम्पूर्ण विश्वमें विखर जायेगी। लोग कहेंगे—यह हमारे स्वस्थ, पवित्र, प्रसन्न जीवनका, ज्ञानका और आनन्दका उद्गम स्थान है।

शेष भगवत्कृपा!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अहं ब्रह्माऽस्मि !

•

तत्करोमि करोमीदं वा
करोमि कर्म अकर्म वा
धर्ममधर्मं वा
करोमि सर्वंमसर्वं वा
अहमेव करोम्यहमेव न करोमि
(अहमेव······केवलमहम्)
'अहं' किमहं किम् ?
न हन्यत इत्यहम्
न जहातीत्यहम्
न हीयत इत्यहम्
(अकारादिहकारान्तमशेषाकारसंस्थिम्)
अहमिमेऽस्मीमाऽस्मीमान्यस्मि
अहं तेऽस्मि, ता अस्मि, तान्यस्मि
अहमेव त्वमस्मि, युवामस्मि, यूयमहम्
अहमेवाऽहमस्म्यावामस्मि, वयमस्मि
अस्त्यहमेव
भात्यहमेव
प्रियोऽप्यहमेव
सर्वमहमेव, सर्वमहमेव

•

'सर्वं' किमस्ति ?
'ब्रह्मैवेदं सर्वम्'
'ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्'
'ब्रह्म' किमस्ति, कीदृशमस्ति ?
'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'
(तदनुभवगम्यमनिर्वचनीयं वा)
इत्थम्
'अहं ब्रह्माऽस्मि !'

बालकृष्ण गर्ग •

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाल्मीकि रामायणः शरणागति

डा. वि. कृष्णस्वामी अय्यंगार [हिन्दी संस्थान : आगरा]

महर्षि वाल्मीकिको संस्कृत भाषाका आदिकवि और उनके रामायणको आदिकाव्य माना जाता है। वाल्मीकि एक तत्त्वदर्शी मुनिपुंगव थे। उनका नाम ही उनकी उग्र तपस्या और एकाग्र साधनाका प्रमाण है। वल्मीकस्य अपत्यं पुमान् वाल्मीकिः। अथवा वल्मीकादागतः वाल्मीकिः। तपस्यामें वे अपने भौतिक शरीर की चिन्तासे इस प्रकार मुक्त हो गये थे कि चारों ओर वल्मीक—बांबी—का निर्माण हो गया। ऋषिवरको इसका खयाल नहीं था। कालान्तरमें घनघोर वर्षाके कारण जब वल्मीकका अन्त हुआ तो उसके भीतरसे आत्मज्ञानके प्रकाशसे पूर्ण एक देदीप्यमान तपोमूर्ति निकली। इसी कारणसे उस असाधारण तपस्वीको 'वाल्मीकि'की अन्वर्थं संज्ञा प्राप्त हुई।

वाल्मीकिसे प्रणीत रामायणको हमारी परम्परामें वेदोंके समान ही मान्यता मिली है। रामायण और महाभारतको 'इतिहास' कहते हैं। इतिहास और पुराण वेदके उपबृंहण हैं—'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहेत्।' उपबृंहणका अर्थ है व्याख्या, विवरण, स्पष्टीकरण या कठिन तथा दुरूह स्थलोंके तात्पर्यका प्रकाशन। वेदोंका अर्थ समझना आसान नहीं है। विद्वान् भी वेदार्थके विषयमें भ्रममें पड़ जाते हैं। अल्पज्ञ तो अर्थका अनर्थ कर लेते हैं। अतएव वेदव्यासने कहा कि ऐसे अल्पश्रुतोंको देखकर वेद भयभीत हो जाते हैं—'बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रतरिष्यति।' अतः वेदोंके तात्पर्यनिर्णयके लिए महर्षियोंने उपबृंहण यानी विवरणात्मक ग्रन्थोंकी रचना की। ऐसे उपबृंहणोंमें रामायणका स्थान मूर्धन्य है। एक महर्षिने तो यहाँतक कहा है कि वेदोंने ही वाल्मीकिके मुँहसे रामायणके रूपमें अवतार लिया। जब वेदवेद्य परमात्माने दशरथके पुत्र रामके रूपमें जन्म लिया। तब उस परमात्माके प्रतिपादक वेदोंने भी एक नवीन रूप धारण करके भूलोकमें जन्म लेनेका संकल्प किया और रामायणके रूपमें वे प्रकट हुए—

वेदवेद्ये परे पुंसि
जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत्
साक्षाद् रामायणात्मना॥

कहनेका तात्पर्य है कि रामायण चारों वेदोंका सार है। यह केवल एक राजकुमारकी जीवनगाथा नहीं है; अपितु वेद, वेदान्त आदि का सार-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संक्षेप इस काव्यमें कविने कहानीके रूपमें प्रस्तुत किया है।

हमारे देशके महान् आचार्योंने रामायणको अत्यन्त आदरकी दृष्टिसे देखा है। रामायणपर कई छोटी-वड़ी टीकाएँ लिखी गयी हैं। भास, कालिदास, भवभूति, राजशेखर आदि कवियोंने वाल्मीकिसे प्रेरणा लेकर संस्कृतमें रामसाहित्यकी रचना की। भारतकी अनेक भाषाओंमें रामसाहित्य विपुल मात्रामें उपलब्ध है। तुलसी, कंबन, कृतिवासा आदि महाकवि रामायण-काव्यके लेखक हैं। वाल्मीकिने अपने ग्रन्थके वालकाण्डमें कहा था कि मेरा यह काव्य कवियोंके लिए एक आधार ग्रन्थ वनेगा—'परं कवीनामाधारम्।' उनकी यह भविष्यवाणी पूर्णरूपसे सफल हुई है। भारत-तथा विदेशोंमें भी रामायणका आज भी इतना प्रचार और प्रसार है कि वाल्मीकिकी इस उक्तिकी सार्थकता स्पष्ट होती है—

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः
सरितः च महीतले।
तावद् रामायणकथा
लोकेषु प्रचलिष्यति॥

रामायणकी इस श्रेष्ठताके विषयमें भारतके किसी आचार्यका कोई मतभेद नहीं है। जैन और वौद्ध भी रामकथाकी लोकप्रियतासे प्रभावित हुए और उन्होंने रामायणका एक नवीन रूप अपनी दृष्टि या सांप्रदायिक मान्यताके अनुसार तैयार कर लिया। संक्षेपमें कहा जा सकता है कि रामायण एक प्रमाण ग्रन्थके रूपमें मान्य है। ऋषिप्रणीत होनेके कारण इस आदिकाव्यको 'स्मृति'का दर्जा देकर 'वेदोपवृंहण प्रमाण'के रूपमें स्वीकार किया गया है। अतएव इस पवित्र ग्रन्थके पठन-पाठनको पुण्यकर्म मानते हैं। 'पुण्यं वेदैः च सम्मितम्।' 'एकैकमक्षरं प्रोक्तं महापातकनाशनम्।' ऐसे अनेक वचन रामायणकी श्रेष्ठताके प्रमाणके रूपमें उद्धृत किये जा सकते हैं।

श्री वैष्णव परम्पराके आचार्योंने वाल्मीकि रामायणको वहुत ऊँचा स्थान दिया है। कहा जाता है कि श्री रामानुजाचार्यने अठारह वार गुरुमुखसे रामायणका श्रवण किया। प्रत्येक वार उन्हें कई प्रकारके विशेषार्थोंका लाभ हुआ। उनका निष्कर्ष था कि यह काव्य केवल सरस काव्य ही नहीं है, किंतु आध्यात्मिक ज्ञानका अपूर्व भण्डार है। गहराई तक जाकर अध्ययन करनेसे नये-नये स्वरस अर्थोंकी प्राप्ति होती है। उनके कई अनुयायियोंने रामायणपर टिप्पणियाँ लिखकर ऐसे विशेषार्थोंपर प्रकाश डाला है। श्री वेदान्तदेशिकका नाम ऐसे आचार्योंमें अग्रगण्य है। श्रीदेशिकने तमिल और संस्कृतमें सैकड़ों ग्रन्थ लिखकर श्रीवैष्णव-सिद्धान्तकी व्याख्या की है। आपकी कई रचनाओंमें रामायणकी व्याख्या आंशिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूपमें प्राप्त होती है। रघुवीरगद्य, अभयप्रदानसार आदि ग्रन्थोंके नाम उल्लेखनीय हैं। आपके बाद श्रीगोविन्दराज नामक एक आचार्यने रामायणपर आदिसे अन्त तक एक संक्षिप्त किंतु गंभीर टीका लिखी, जो 'गोविन्दराजीयम्'के नामसे विख्यात है। श्रीगोविन्दराजने स्थान-स्थानपर श्रीवेदान्तदेशिकके विचारोंका उल्लेख किया है। वाल्मीकि रामायणकी श्रीवैष्णव मतानुसारी व्याख्याओंमें 'गोविन्द राजीयम्'का विशिष्ट स्थान है।

श्रीवेदान्तदेशिकने रामायणको 'शरणागतिवेद' कहा। वेदमें एक अत्यन्त मूल्यवान् भाग होता है 'उपनिषद्।' श्री देशिककी मान्यता है कि युद्धकाण्डमें विभीषण शरणागतिका प्रसंग ही रामायणरूपी वेदका 'उपनिषद् भाग' है। 'अभयप्रदानसार'में आपने इस अंशकी सप्रमाण व्याख्या की है। आपका अनुसरण करते हुए श्रीगोविन्दराजने भी अपनी टीकामें शरणागतिके तत्त्वका विवेचन किया है। श्रीवेदान्तदेशिक तथा श्रीगोविन्दराजके आधारपर इस लेखमें अत्यन्त संक्षेपमें 'शरणागति'के स्वरूपको स्पष्ट करनेका एक विनम्र प्रयास किया जा रहा है। श्रीदेशिकके विचार पूर्वाचार्योंकी परम्परासे प्राप्त है। आलवारोंने नालायिर दिव्यप्रबन्धमें शरणागतिपर खूब प्रकाश डाला है। श्रीरामानुजाचार्यने श्रीभाष्य, गीताभाष्य, शरणागतिगद्य आदि कृतियोंमें इस विषयकी व्याख्या की है। इन पूर्वाचार्योंकी सूक्तियोंसे प्रेरणा लेकर श्रीदेशिकने अपने विविध ग्रन्थोंमें 'शरणागति'का विस्तारसे प्रतिपादन किया है। शरणागतिको ही प्रपत्ति, भरसमर्पण, न्यास, भरन्यास आदि कई शब्दोंसे शास्त्रोंमें बताया गया है। श्रुति में,

१. तस्मात् न्यासमेषां तपसामतिरिक्तमाहुः।

२. वध्यं प्रपन्नं न प्रतिप्रयच्छन्ति।

३. मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।

इत्यादि वाक्योंमें शरणागतिका निर्देश है। भागवत, विष्णुपुराण, महाभारत आदि पौराणिक ग्रन्थोंमें शरणातिके कई उपाख्यान मिलते हैं। गीतामें तो शरणागतिका स्पष्ट विधान प्राप्त है। भगवान् श्रीकृष्णका कथन है कि भक्तियोगकी सफलताके लिए शरणागति अपेक्षित है। इन सब प्रमाणोंका विवेचन कर श्रीवेदान्त देशिकने न्यासदशक, न्यासतिलक, न्यासविंशति, शरणागतिदीपिका आदि ग्रन्थोंमें, कहीं संक्षेपमें और कहीं विस्तारसे, विविध प्रकारके पाठकोंकी रुचिके अनुसार, शरणागतिका अत्यन्त मार्मिक निरूपण किया है। इसीलिए कुछ विद्वान् मानने लगे कि श्रीदेशिक तो श्री रामानुजाचार्यके ही एक नवीन अवतार हैं। कहा भी है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीभाष्यकारः पन्थान—
मात्मना दर्शितं पुनः ।
उद्धर्तुमागतो नून—
मित्युक्तायास्तु मङ्गलम् ॥

अतः रामायणमें निरूपित शरणागतिकी व्याख्या करनेमें श्रीवेदान्तदेशिककी रचनाओंसे विषय-संग्रह करना उचित ही है। 'शरणागति धर्म' को प्रायः सभी संप्रदायोंके आचार्य स्वीकार करते हैं। किसी अंग या अंशके विषयमें थोड़ा मतभेद हो सकता है। किंतु सामान्य रूपसे शरणागतिका सिद्धान्त सर्वमान्य है।

रामायणमें शरणागतिके कई प्रसंग आये हैं। पहला प्रसंग बालकाण्डमें है। राजा दशरथने पुत्रप्राप्तिके लिए महर्षि ऋष्यश्रृंगके मार्ग दर्शनमें एक यज्ञ किया। 'पुत्रकामेष्टि'में हविर्भागको लेनेके लिए इन्द्र आदि देवता आ पहुँचे। वे सब रावणके अकथनीय अत्याचारोंसे पीड़ित थे। उन्होंने विचार किया कि इस महान् संकटमें श्रीमन्नारायण ही हमारी रक्षा कर सकते हैं। अतः ब्रह्माकी सलाह मानकर सभी देवताओंने नारायणसे रक्षाकी प्रार्थना की। रक्षाकी ऐसी प्रार्थनाको ही शरणागति कहते हैं। नारायणने उनकी प्रार्थनाको स्वीकार करके अभयका वरदान दिया। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मानवके रूपमें जन्म लेकर मैं रावणका वध करूँगा। देवताओंकी शरणागति सार्थक हुई। भगवान्ने श्रीरामके रूपमें अवतार लिया और प्रपन्नजनरक्षणके लिए रावणका संहार किया।

दूसरा प्रसंग काकासुरका है। यह घटना 'अरण्यकाण्ड'की है। किंतु वाल्मीकिने अरण्यकाण्डमें इस वृत्तान्तका वर्णन नहीं किया। सुन्दरकाण्डमें हनुमानको सीताजीने इस घटनाके विषयमें पूरा विवरण दिया है। एकान्तमें श्रीराम सीताजीकी गोदमें सिर रखकर विश्राम कर रहे थे—'सुखसुप्तः परंतपः।' इस समय इन्द्रका पुत्र जयन्त काकासुरका वेष धारण करके वहाँ आया और सीताजीको सताने लगा। उसकी चोंचकी मारसे सीताजीके अंगसे रक्तकी बूंदें टपकने लगीं और इससे श्रीरामकी निद्रा भंग हुई। श्रीरामने एक तृणको ही ब्रह्मास्त्रके मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके काकासुर पर उसका प्रयोग किया। रामबाणसे भीत होकर काक रक्षाके लिए पिता इन्द्रके पास गया। इन्द्रने उसकी रक्षा नहीं की। अन्य देवता भी रामबाणके भयसे उसकी रक्षा नहीं कर सके। तत्त्वज्ञ महर्षियोंने काकासुरको शरण देनेसे इनकार किया। चारों ओर से निराश होकर अन्तमें काकासुरने श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम करके रक्षाकी प्रार्थना की। वाल्मीकिने सुन्दर शब्दोंमें कहा है—

स पित्रा च परित्यक्तः
सुरैः च समहर्षिभिः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्रीन् लोकान् संपरिक्रम्य
तमेव शरणं गतः ॥

काकासुर रामद्रोही था। रामके सिवाय और कोई उसकी रक्षा नहीं कर सकता था। अतएव माता-पिताने भी संकटत्रस्त पुत्रकी रक्षाके लिए अपनी ओरसे कोई प्रयास नहीं किया। वे जानते थे कि यदि हम इस रामद्रोही-को अभयका आश्वासन देते हैं तो यह रामकी शरणमें नहीं जायेगा। हमारा प्रेम प्रदर्शन इसके लिए घातक होगा। हम उपेक्षाका भाव दिखायें तो यह निरुपाय होकर रामकी शरणमें जायेगा। राम तो शरणागत-वत्सल हैं। वे धर्मका रहस्य जानते हैं और उनका अवतार ही धर्म-संस्थापनके लिए हुआ है। अतः वे हमारे पुत्रकी रक्षा करेंगे। ऐसा विचार करके पुत्रकी हितकामनासे ही माता-पिताने उसको आश्रय देनेसे इनकार किया। यही विचार अन्य देवताओं और महर्षियोंका भी था। वे सब काका-सुरके हितैषी थे। उनकी इच्छा थी कि यह पापी रामके पास जाकर अपना अपराध तो स्वीकार करे; उनसे क्षमा प्रार्थना करे। उन्हें विश्वास था कि राम उदार हैं; सच्चे दिलसे क्षमा माँगनेपर वे अवश्य ही क्षमा करेंगे। इसी उपायसे इस जघन्य पापीकी रक्षा हो सकेगी। ऐसी परोपकारी वृत्तिके कारण ही उन्होंने काकासुरकी स्वयं रक्षा करने-की चेष्टा नहीं की। जब आर्द्रापराधी काकासुरने दीनतासे प्रणाम करके रक्षाकी प्रार्थना की तो क्षमाधनी श्रीरामने उसके अपराधकी परवाह किये बिना रक्षा की। वाल्मीकि कहते हैं—

वधार्हमपि काकुत्स्थः
कृपया पर्यपालयत्।

काकासुरके वृत्तान्तसे हमें यह भी शिक्षा मिलती है कि शरणागति-की सफलताके लिए रक्षकमें दो गुण अपेक्षित हैं—सामर्थ्य और करुणा। इन्द्र तो काकासुरके पिता हैं। फिर भी उन्होंने पुत्रकी रक्षा नहीं की। सामर्थ्यका अभाव ही ऐसी उपेक्षाका मूल कारण है। पुत्रकी रक्षा करनेकी प्रवल इच्छा होनेपर भी इन्द्रको मालूम था कि श्रीरामके क्रोधसे पुत्रको बचानेकी शक्ति मुझमें नहीं है।

केवल इच्छा करनेसे क्या होता है? शक्तिके विना इच्छा निरर्थक है। कुछ लोग रक्षा करनेमें समर्थ होते हैं। किन्तु वे निर्दयी और हृदयहीन हों तो उनसे रक्षाकी आशा करना व्यर्थ है। प्रस्तुत प्रसंगमें श्रीराममें दोनों गुण पूर्ण हैं। वे शरणागतकी रक्षा कर सकते हैं। उनकी शरणमें जानेके बाद किसीसे कोई भय नहीं हो सकता। और वे दयाकी मूर्ति हैं। 'कृपया पर्यपालयत्।' शरणागतके रक्षणका कारण उनकी कृपा ही है। किसीकी धमकीसे या दबावमें आकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं, अपितु अपनी सहज कृपासे उन्होंने शरणागतकी रक्षा की।

लोक दृष्टान्तसे भी इस तत्त्वकी व्याख्या की जा सकती है। एक गरीब आदमी विषम आर्थिक संकटमें पड़ा है। परिवारके लोग उपवास कर रहे हैं; बच्चे बीमार हैं; चिकित्साके लिए धन नहीं है; कहींसे कुछ उधार पानेकी आशा नहीं दीखती; धन कमानेकी कला वह जानता ही नहीं। महाजन ऋणकी वसूलीके लिए तकाजा कर रहा है। ऐसी दारुण स्थितिमें वह अपने एक मित्रके पास जाकर नम्रतासे सहायताकी याचना करता है। मित्रके मनमें उस अभागेके लिए पूर्ण सहानुभूति है। वह सहायता करना चाहता है। परन्तु वह स्वयं भी गरीब है; भिक्षावृत्तिसे उदरभरण करता है। तो इच्छा होनेपर भी वह मित्रकी सहायता नहीं कर सकता। मैत्रीके मीठे शब्दोंसे तो उसकी दुःख-ज्वालाका शमन नहीं हो सकता। यहाँ करुणा जरूर है; लेकिन सामर्थ्यके अभावके कारण मित्रकी यह करुणा निरर्थक हो गयी है।

उसी गाँवमें एक धनवान भी है। उसके पास संपत्तिकी कमी नहीं है। वह चाहे तो इस गरीबके सब कष्टोंको मिटाकर इसका उद्धार कर सकता है। किन्तु वह कंजूस है। एक फूटी कौड़ी भी दानमें देना नहीं चाहता। गरीबकी प्रार्थना सुनकर उसके मनमें दया उत्पन्न नहीं होती। वह तो स्पष्ट शब्दोंमें इनकार कर देता है। धनवानमें सहायता करनेकी शक्ति है; करुणा नहीं है। करुणाके अभावमें केवल सामर्थ्य भी अप्रयोजक है। शरणागतको उससे किसी प्रकारका लाभ नहीं होता।

अब यह गरीब आदमी दूसरे गाँवमें किसी सज्जनके पास जाता है और अपनी कहानी सुनाकर सहायता माँगता है। वे सज्जन धनी हैं और उदार भी। वे उसपर दया करके काफी धन देते हैं। उनमें सहायता करनेकी शक्तिके साथ उदारताका भी गुण है। अर्थात् उनमें सामर्थ्य और करुणाका समुच्चय है। अतः उनके यहाँ की गयी प्रार्थना सफल होती है। इसप्रकार हम देखते हैं कि यदि रक्षकमें सामर्थ्य और करुणाका योग है तो शरणागति नियमित रूपसे सार्थक बनती है। ऐसे रक्षकको चुनकर शरणागति करनी चाहिए। हम अविवेकसे किसी अयोग्य व्यक्तिको रक्षक मानलें तो दोष हमारा है; शरणागति शास्त्रको दोष देना उचित नहीं होगा। महर्षि यास्कके शब्दोंमें कहना होगा कि यह पुरुषका—एक व्यक्तिका दोष है, शास्त्रका नहीं। 'सैषा पुरुषगर्हा, न शास्त्रगर्हा।'

अयोग्य व्यक्तिको रक्षक मानकर शरणागति करना निरर्थक होता है। इसका एक उदाहरण रामायणमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिलता है। विभीषणकी सलाह मानकर श्रीरामने समुद्रराजसे प्रार्थना की कि लंका तक जानेके लिए हमें मार्ग दो। दर्भशयनमें तीन दिन तक उपवास करके शरणागति की। विभीषणने अपने अनुभवसे जाना था कि शरणागतिसे अभीष्ट अर्थकी प्राप्ति होती है। अतः उन्होंने श्रीरामके लिए भी यही सलाह दी—

समुद्रं राघवो राजा
शरणं गन्तुमर्हति।

यह सलाह श्रीरामको भी पसन्द आयी—

प्रकृत्या धर्मशीलस्य
राघवस्याप्यरोचत ॥

रामने शरणागतिका अनुष्ठान किया—

ततः सागरवेलायां
दर्भानास्तीर्य राघवः।
अञ्जलिं प्राङ्मुखः कृत्वा
प्रतिशिश्ये महोदधेः ॥
बाहुं भुजगभोगाभ—
मुपधायारिसूदनः ॥

श्रीरामने दृढ संकल्प कर लिया था कि समुद्रराजकी कृपासे मार्ग प्राप्त करूँगा ही।

अद्य मे मरणं वाथ
तरणं सागरस्य वा।

इसप्रकार दृढतासे नियमपूर्वक तीन दिन तक व्रतका पालन किया—

तस्य रामस्य सुप्तस्य
कुशास्तीर्णे महीतले।
नियमादप्रमत्तस्य
निशास्तिस्रोऽतिचक्रमुः ॥

हमारे जैसा कोई सामान्य कोटिका पुरुष होता तो शायद यह संभावना होती कि नियमके पालनमें कोई त्रुटि रह गयी, विश्वासमें दृढता नहीं थी या थोड़े ही समयमें ऊबकर व्रतका भंग कर दिया। किन्तु श्रीराम तो धर्मके साकार रूप थे—'रामो विग्रहवान् धर्मः।' उन्होंने पूर्ण रूपसे नियमका पालन किया। फिर भी समुद्रराजकी कृपा प्राप्त नहीं हुई। वाल्मीकिके शब्द हैं—

न च दर्शयते मन्दः
तदा रामस्य सागरः।

रामकी शरणागति विफल हो गयी। तो इस विफलताका कारण क्या है? शरणागतमें क्या कोई दोष था जिसके कारण शरगणागतिका भंग हो गया? श्रीराममें ऐसे दोषकी संभावना भी नहीं कर सकते। लेकिन जिसको रक्षक या शरण्य माना था, जिससे प्रार्थना की जा रही थी, उसमें—समुद्रराजमें ही—दोष था। रक्षकके दोषके कारण यह शरणागति व्यर्थ हुई। श्रीरामने क्रोधमें आकर समुद्रराजको दण्ड देनेका संकल्प किया तो वह भयभीत होकर श्रीरामके सामने उपस्थित हुआ। लातोंके देवता बातोंसे नहीं मानते। अनुदार, अनभिज्ञ तथा असभ्य लोग शरणागतिका तत्त्व क्या जानें? वे तो केवल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दण्डके भयसे ही वशमें आ सकते हैं। श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा है कि गुण-हीन व्यक्ति गुणोंका आदर नहीं करते—

अवलेपः समुद्रस्य
न दर्शयति यत् स्वयम् ॥
प्रशमः च क्षमा चैव
आर्जवं प्रियवादिता।
असामर्थ्यं फलन्त्येते
निर्गुणेषु सतां गुणाः ॥

अपनी शरणागतिको विफल जानकर श्रीरामने समुद्रको सुखानेका संकल्प किया और घोषणा की—

चापमानय सौमित्रे
शरांश्चाशीविषोपमान्।
सागरं शोषयिष्यामि
पद्भ्यां यान्तु प्लवंगमाः ॥

रामके क्रोधसे डरकर समुद्रराजने प्रत्यक्ष होकर रामकी सहायता करने-का वचन दिया। वाल्मीकिने इस घटनाके द्वारा बताया है कि समर्थ और कारुणिक व्यक्ति ही शरणागतकी रक्षा कर सकता है। यदि कोई व्यक्ति समुद्रराजके समान निर्गुणी है तो उसके विषयमें शरणागतिका प्रयोग करना वृथा है। शास्त्रकारोंने इस तथ्यके आधारपर निष्कर्ष निकाला है कि शरणागतिकी सार्थकताके लिए रक्षकमें सामर्थ्य और कारुण्य दोनोंका समावेश अनिवार्य है। 'समर्थकारु-णिकविषयशरणागतेः फलाव्यभिचारि-त्वनियमः।' श्रीवेदान्तदेशिकने 'न्यास-विंशति' के एक छन्दमें इसी वातको स्पष्ट किया है—

सानुक्रोशे समर्थे प्रपदन-
मृषिभिः स्मर्यतेऽभीष्टसिद्ध्यै।
लोकेप्येतत् प्रसिद्धं, न च
विमतिरिह प्रेक्ष्यते क्वापि तन्त्रे ॥

अर्थात् शरणागतिका सिद्धान्त शास्त्र तथा लोक दोनोंके आधारपर प्रमा-णित है।

श्रीराम शरणागतोंकी रक्षा करना अपना धर्म समझते हैं तो उनकी धर्मपत्नी सीता भी इस श्रेष्ठ धर्मका पालन करनेमें पतिसे कम नहीं हैं। सीताजीको वशमें करना चाहता था। उसने अपनी वीरता, अतुल संपत्ति, प्रभुता, शक्तिका सीताजीके सामने प्रदर्शन किया। किन्तु पातिव्रत्यकी सजीव प्रतिमा माता सीताने स्पष्ट घोषणा की कि मैं परपुरुषको अपने चरणसे भी स्पर्श करना नहीं चाहती।

न त्वहं राघवादन्यं
पदापि पुरुषं स्पृशे।

तो रावणने कुछ राक्षसियोंको आदेश दिया कि तुमलोग सीताको डरा-धमकाकर उसे मेरे वशमें करनेका प्रयास करो। ये राक्षसियाँ रावणकी दासियाँ थीं। उसकी आज्ञासे सीताको सताने लगीं। हनुमानजीने अशोक वृक्षकी शाखामें विलीन होकर इन राक्षसियोंकी क्रूरता भरी वातें सुनी थीं। उनको इन राक्षसियोंपर भयंकर क्रोध आया। किन्तु उस समय राक्ष-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सियोंको दण्ड देना संभव नहीं था। रावणके संहारके बाद हनुमानजी श्रीरामकी आज्ञासे सीताजीको यह सुखद संवाद देने आये। शत्रुवधकी शुभवार्ता सुनकर सीताजीकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं रही। तब हनुमानजीने उचित समय जानकर सीताजीसे प्रार्थना की कि इन राक्षसियोंको दण्ड देनेकी मेरी प्रबल इच्छा है। मुझे इसकी अनुमति देनेकी कृपा कीजिये। यही वरदान मुझे चाहिए। हनुमानजीके शब्द हैं—

इमास्तु खलु राक्षस्यो
यदि त्वमनुमन्यसे।
हन्तुमिच्छाम्यहं सर्वाः
याभिस्त्वं तर्जिता पुरा॥
क्लिश्यन्तीं पतिदेवां त्वा—
मशोकवनिकां गताम्।
घोररूपसमाचाराः
क्रूराः क्रूरतरे क्षणाः॥
राक्षस्यो दारुणकथाः
वरमेतत् प्रयच्छ मे॥

हनुमानजीका पराक्रम तो विश्वविख्यात है। उन्होंने बड़े-बड़े प्रतापी राक्षसोंको भी मच्छरोंके समान समझकर मर्दन कर दिया था। कहा भी है—

गोष्पदीकृतवाराशिं
मशकीकृतराक्षसम्।

तो उनकी ऐसी बातें सुनने मात्रसे राक्षसियोंकी मानों आधी मृत्यु हो गयी। तब सीताजीने कहा कि राजाकी आज्ञासे इन राक्षसियोंने मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया। तो इसमें परच्छन्दानुवर्ती इन दासियोंका क्या अपराध है? रावणकी मृत्युके बाद अब तो राक्षसियाँ ऐसा दुर्व्यवहार नहीं करतीं। अतः स्पष्ट है कि यह अपराध रावणका है, इन दासियोंका नहीं। सीताजीके शब्द हैं—

राजसंश्रयवश्यानां
कुर्वन्तीनां पराज्ञया।
विधेयानां च दासीनां
कः कुप्येद् वानरोत्तम॥
आज्ञप्ता रावणेनैता
राक्षस्यो मामतर्जयन्।
हते तस्मिन् न कुर्युर्हि
तर्जनं वानरोत्तम॥

अन्तमें सीताजीने कहा कि इस संसारमें ऐसा व्यक्ति कौन है जिसने कभी कोई अपराध नहीं किया हो? हम सब दोषी ही हैं। हममें-से कोई निर्दोष नहीं है। अतः श्रेष्ठ व्यक्तियोंको चाहिए कि अपराधियोंके सम्बन्धमें करुणाका व्यवहार करें। दूसरेको दोषी ठहराकर दण्ड देना आसान है; किन्तु सहानुभूति और करुणाका व्यवहार करना ही धर्मका सार है। उन्होंने कहा—

पापानां वा शुभानां वा
वधार्हाणां प्लवंगम।
कार्यं करुणमार्येण
न कश्चिन्नापराध्यति॥

सीताजीने उन राक्षसियोंकी रक्षा की।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामायणके पाठक जानते हैं कि 'त्रिजटा' नामक राक्षसीने स्वप्नमें रामकी विजय तथा रावणकी मृत्युको देखकर अपनी सहेलियोंको उपदेश दिया था कि सीताको सतानेका काम बन्द करो। रामकी विजय होनेवाली है। फिर हमारी क्या दशा होगी? हमारी रक्षा करनेकी योग्यता सिर्फ सीतामें है। आओ, हम सीताजीसे प्रार्थना करें। आप तो अत्यन्त उदार हैं। आप ही हमारी रक्षा करेंगी। त्रिजटाकी इन बातोंसे प्रसन्न होकर सीताने राक्षसियोंकी रक्षा करनेका वचन दिया—

अलमेषा परित्रातुं
राक्षस्यो महतो भयात्।
ततः सा ह्रीमती बाला
भर्तुर्विजयहर्षिता।
अवोचद् यदि तत्तथ्यं
भवेयं शरणं हि वः॥

सीताजीने उस वचनका पालन किया। हनुमानके क्रोधसे संत्रस्त असहाय राक्षसियोंकी रक्षा की।

यहाँ शंका की जा सकती है कि इस प्रसंगमें शरणागतिका उल्लेख कहाँ हुआ है? त्रिजटाने शरणागतिका प्रस्ताव किया था। परन्तु राक्षसियोंने त्रिजटाके उपदेशको स्वीकार नहीं किया। शरणागति नहीं की। फिर भी सीताजीने अपनी असाधारण करुणाके कारण उनकी रक्षा की। अतः इस प्रसंगमें शरणागतिकी चर्चा कैसे उठ सकती है? इस शंकाका समाधान है कि त्रिजटाने तो शरणागतिका प्रस्ताव कर ही दिया था। राक्षसियोंने अपनी तामस प्रकृतिके कारण उस प्रस्तावका समर्थन नहीं किया; परन्तु उन्होंने उसका विरोध भी नहीं किया। वे मौन रहीं। मौनं संमतिसूचकम्। सीताजीने अपनी स्वाभाविक उदारतासे यही समझा कि अप्रतिषेध अनुमतिका एकप्रकार है। राक्षसियोंने प्रस्तावित शरणागतिका विरोध नहीं किया; इसीको अनुमति या स्वीकृतिके रूपमें ग्रहण करके सीताजीने इन तामस तथा मूढ प्रकृतिकी राक्षसियोंकी रक्षा की। शरण्यकी उदारता ही तो शरणागतिकी सार्थकताका आधार है। यह उदारता श्रीरामकी अपेक्षा सीताजीमें अधिक ही है। एक प्रसिद्ध आचार्यने सीताजीकी इस अभूतपूर्व उदारताकी प्रशंसामें कहा है कि आश्रितोंकी रक्षा करनेके विषयमें सीताजीका स्थान श्रीरामकी तुलनामें बहुत ऊँचा है—

मातर्मैथिलि राक्षसीस्त्वयि तथाप्यार्द्रापराधास्त्वया रक्षन्त्या पवनात्मजात् लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता।

अतएव श्रीवेदान्तदेशिकने माता लक्ष्मीके विषयमें कहा कि वे केवल अनुग्रह करना जानती हैं, निग्रह करना या दण्ड देना तो वे बिलकुल नहीं जानती। वे केवल दयामयी हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुग्रहमयीं वन्दे
नित्यमज्ञातनिग्रहाम् ।।

भगवान् तो निग्रह भी करते हैं; अर्थात् वे अपराधीको दण्ड देते हैं। अवतारके प्रयोजनोंमें पहला साधुओंकी रक्षा है तो दूसरा दुष्टोंका विनाश है! ये दोनों कार्य धर्मसंस्थापनके ही अंग हैं—

परित्राणाय साधूनां
विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय
संभवामि युगे युगे ।।

किन्तु जगन्माता दण्डविधानमें रुचि नहीं लेतीं। उनका एक ही काम है— आश्रितोंकी रक्षा करना।

सीताजीने रावणको भी शरणागतिका उपदेश दिया। उनकी सलाह थी कि तुम रामसे मित्रता कर लो; वे तुम्हारे अपराधको क्षमा करके तुम्हारी रक्षा करेंगे। रावण जैसे अभिमानी पुरुषको हितके मार्गपर लानेके लिए सीताजीने शरणागतिको 'मैत्री'के रूप में प्रस्तुत किया। उनका वचन है—

तेन मैत्री भवतु ते
यदि जीवितुमिच्छसि।
विदितः स हि धर्मज्ञः
शरणागतवत्सलः ।।

यह दूसरी बात है कि उनके उपदेशको रावणने ग्रहण नहीं किया। किन्तु सीताजीका हृद्गत भाव तो बिलकुल स्पष्ट है। यदि रावण जैसा अपराधी भी अपने दुष्कर्मपर पश्चात्ताप करके रामकी शरणमें आता है तो श्रीराम उसकी रक्षा करनेके लिए तैयार हैं। रक्षाकी प्रार्थना करना मात्र रावणका कर्त्तव्य है; श्रीरामकी ओरसे कभी इनकार या निषेध नहीं हो सकता। यह श्रीरामके अन्तरंगको जाननेवाली सीताजीका आश्वासन है। इसका तात्पर्य है कि बड़े-से-बड़ा पापी भी शरणागतिका अधिकारी है।

शरणागतिका स्वरूप क्या है? पाञ्चरात्र संहिताओं में शरणागतिका विस्तृत निरूपण किया गया है। हम पाञ्चरात्र आगमको प्रमाण मानते हैं। भगवान्ने वेदोंका प्रवचन किया, किंतु उन्होंने पाञ्चरात्रकी रचना की। भगवान्की कृति होनेके कारण हम उसे प्रमाण मानते हैं। श्रीवेदान्त देशिकने यतिराजसप्ततिमें भगवान्को प्रथम गुरु कहकर इस तथ्यका उल्लेख किया है—

कमप्याद्यं गुरुं वन्दे
कमलागृहमेधिनम्।
प्रवक्ता छन्दसां, वक्ता
पाञ्चरात्रस्य यः स्वयम् ।।

श्रीरामानुजाचार्यने श्रीभाष्यमें स्थापनाकी है कि पाञ्चरात्र प्रमाण ग्रन्थ है। पाञ्चरात्रमें कहा गया है कि शरणागति अंगी है और उसके पाँच अंग हैं। अंगोंके साथ अंगीको भी गिनायें तो शरणागतिको 'षड्विध' कह सकते हैं। प्रमाण है—

आनुकूल्यस्य संकल्पः
प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रक्षिष्यतीति विश्वासो
गोप्तृत्ववरणं तथा ।।
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये
षड्विधा शरणागतिः ।।

आत्मनिक्षेप ही शरणागति है। आत्माको भगवान्के हाथोंमें सौंपना, अपना भार ईश्वर पर छोड़ देना ही 'निक्षेप' है। यही 'न्यास' है। भरका समर्पण या भरन्यास भी इसीको कहते हैं। प्रपत्तिका अर्थ भी यही है। आत्मनिक्षेप अंगी या प्रधान है। इसके पाँच अंग हैं—१. आनुकूल्यका संकल्प। २. प्रातिकूल्यका वर्जन। ३. महाविश्वास। ४. गोप्तृत्व-वरण। और अन्तमें ५. कार्पण्य। इस पञ्चांग संयुत प्रपत्तिको भगवान्को वशमें करनेका साधन-वशीकरणोपाय-कहते हैं।

पहला अंग है आनुकूल्कया संकल्प। इसका तात्पर्य संक्षेपमें इतना है कि हम प्रपत्ति करनेसे पूर्व अपना यह संकल्प या विचार प्रकट करते हैं कि आजसे हम भगवान्के आदेशका पालन करेंगे। श्रुति स्मृति ममैवाज्ञा। वेद, स्मृति आदि शास्त्र भगवान्की आज्ञा है। आजतक हमने वेदोक्त धर्मका पालन नहीं किया। भगवान्का कहना है कि जो मेरा भक्त बननेका दावाका करता है किन्तु मेरी आज्ञा-का भंग करता है उसे मैं द्रोही मानता हूँ। वह सच्चा वैष्णव नहीं है।

आज्ञाच्छेदी मम द्रोही
मद्भक्तोपि न वैष्णवः ।।

हम चाहते हैं कि भगवान् हमारी रक्षा करें। उनकी कृपासे ही रक्षा हो सकती है। हम उनकी आज्ञाका उल्लंघन ही करते रहें तो फिर हम कैसे कृपाके पात्र बन सकते हैं? अतः हमें यह दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिए कि इस क्षणसे हम शास्त्रोक्त मार्गका अनुसरण करेंगे। यही आनुकूल्यका संकल्प है।

इसीका एक पहलू है 'प्रातिकूल्य-का वर्जन।' अबतक तो हम अज्ञान और स्वार्थके कारण भगवान्की इच्छा-के विरुद्ध कर्म कर रहे थे। प्रतिकूल आचरणका अर्थ है शास्त्रविधिका उल्लंघन करना। पुत्रैषणा, वित्तैषणा आदिके जालमें फँसकर हमने अपने बहुमूल्य जीवनको निरर्थक बना दिया था। आज अनुकूल आचरणका शपथ ले रहे हैं, तो प्रतिकूल आचरणका परित्याग उसके लिए अनिवार्य शर्त है। अतः आनुकूल्यसंकल्प तथा प्राति-कूल्यवर्जन दोनों एक सिक्केके दो पहलू हैं। एकके बिना दूसरेकी सिद्धि नहीं हो सकती।

इन दो अंगोंके विवेचनसे एक महत्त्वपूर्ण तथ्य उभरकर सामने आता है। हमारा आजतकका व्यव-हार अतीतकी बात है। उसे बदलना संभव नहीं है। आजतक हमने जो किया सो किया। अपनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गलतीको स्वीकार करके हम पश्चात्ताप कर सकते हैं; भविष्यमें फिर कभी वही गलती न करनेका निर्णय ले सकते हैं। भविष्यको सुधारनेका इरादा-सत्संकल्प ही प्रमुख है। भगवान् हमारे अतीतके लिए हमें दोषी ठहराकर दण्ड नहीं देते, यदि हम भविष्यमें उनकी आज्ञाके अनुसार चलनेका आश्वासन देते हैं। यह ईश्वरकी अनन्त क्षमा ही हमारी रक्षाकी गारण्टी है। गीताकारने कहा है—

अपि चेत् सुदुराचारो
भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः
सम्यग् व्यवसितो हि सः ॥

अतः अतीतके लिए शोक करानेके स्थानपर भविष्यको सुधारनेका दृढ संकल्प करना चाहिए। श्रीदेशिकने 'दयाशतकमें' कहा है कि भगवान् भक्तके दोषोंकी उपेक्षा करते हैं—

भावितं श्रीनिवासस्य
भक्तदोषेष्वदर्शनम् ॥

इस अर्थमें प्रपत्तिको 'सर्वपाप प्रायश्चित्तकी संज्ञा दी गयी है। श्रीकृष्णने स्पष्ट शब्दोंमें घोषणा की—

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो
मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

प्रपत्ति ही वह अमोघ ब्रह्मास्त्र है जो हमारे समस्त पापोंका समूल नाश करता है। अतः पापोको भी भगवान्के दण्डसे भीत होकर विमुख नहीं होना चाहिए; किन्तु अञ्जलि बांधकर उसके क्रोधको शान्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिए। श्रीवेदान्त देशिकने इस बातको सुन्दर शब्दोंमें कहा है—

प्रत्यस्त्रमञ्जलिरसौ
तव निग्रहास्त्रे।

प्रपत्तिका तीसरा अंग है महाविश्वास। भगवान्की उदारता, करुणा, क्षमा और रक्षा करनेकी क्षमता पर दृढ विश्वास नहीं हो तो रक्षाकी प्रार्थना करनेका सवाल ही नहीं उठता। हमें यह विश्वास होना चाहिए कि भगवान् तो सर्वशक्तिमान् और सत्यसंकल्प हैं। वे कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ हैं। वे स्वतन्त्र हैं। अतः हमारे सब अपराधोंको क्षमा करके हमारी सर्व प्रकारसे रक्षा कर सकते हैं। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाले अचिन्त्य, अद्भुत शक्तिसे संपन्न परमात्माके संकल्पको कौन अन्यथा कर सकता है? वे सर्वेश्वर हैं। सब उनके अधीन हैं। यदि वे रक्षा करनेके लिए तैयार हैं तो कोई उस भाग्यशाली प्रपन्नका तनिक भी अनिष्ट नहीं कर सकता। यदि वे किसीको दण्ड देना चाहते हैं तो संसारकी कोई शक्ति उस भाग्यहीनकी रक्षा नहीं कर सकती। इसलिए वेदान्तियोंका निष्कर्ष है कि हमारा एकमात्र रक्षक ईश्वर ही है। अन्य किसीको भ्रमसे रक्षक माननेवाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तमें धोखा खायेंगे। परमात्माको ही सर्व प्रकारसे रक्षक मानकर उसीकी कृपापर अवलम्बित रहना महाविश्वास है। इस भावकी अभिव्यक्ति निम्नलिखित शब्दोंमें की गयी है—

त्वयि रक्षति रक्षकैः किमन्यैः
त्वयि चारक्षति रक्षकैः किमन्यैः ॥

अतएव प्रपन्न परमात्माको ही अपना सर्वविध बन्धु समझकर उसीकी शरणमें जाना है—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥

वनवासके लिए प्रस्थान करनेके बाद लक्ष्मणने सुमन्त्रसे यही कहा कि मैं महाराज दशरथको पिता नहीं मानता। मेरे लिए पिता, भ्राता, बन्धु सब श्रीराम ही हैं। रामको ही मैं अपना सर्वस्व मानता हूँ।

अहं तावन् महाराजे
पितृत्वं नोपलक्षये।
पिता भ्राता च बन्धुश्च
सर्वं च मम राघवः ॥

लक्ष्मणके इन शब्दोंमें परमैकान्ती भागवतकी आत्मा बोल रही है। 'अनन्यभाक्' 'भक्त्या त्वनन्यया शक्यो अहमेव विधोऽर्जुन।' इत्यादिमें गीताकारने इसी अनन्यता अन्य किसीका भरोसा या सहारा छोड़कर एकमात्र परमात्माका आश्रय ग्रहण करनेका विधान किया है। जिसका विश्वास शिथिल है वह क्षुद्र स्वार्थकी पूर्तिके लिए लोभमें पड़कर इधर-उधर भटकेगा। उसकी स्थिति राम और लक्ष्मणके बीच बारी-बारीसे भटकनेवाली शूर्पणखाकी स्थिति होगी। किन्तु जो परमात्मापर एकनिष्ठ और अचल श्रद्धा रखता है, वह कठिन परीक्षाके प्रसंगमें भी भटकेगा नहीं। अतः हमें लक्ष्यभ्रष्ट होनेसे बचानेके लिए 'महाविश्वासकी' आवश्यकता है।

कुमारसंभवमें महाकवि कालिदासने वर्णन किया है कि भगवान् शंकरने तपस्यामें लीन पार्वतीकी परीक्षा की थी। ब्रह्मचारीके वेषमें वे पार्वतीके आश्रममें पहुँचे और हितैषीकी भूमिका अदा करते हुए उपदेश देने लगे कि शंकर अमंगलका स्वरूप है, अतः तुम उससे विवाह करनेकी मूर्खता मत करो। पार्वतीने पहले तो उनके कुतर्कोंका उत्तर दिया। यहाँ तक कहा कि शंकरमें दोष ही दोष भरे हुए हों, तब भी मैं उनसे प्रेम करती हूँ। प्रेम तो अन्धा होता है—

न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते।

जब तर्कोंसे कोई लाभ नहीं हुआ, तो पार्वतीने कहा कि महापुरुषोंकी निन्दा करना ही नहीं, अपितु उस निन्दाको सुनना भी पापका काम है—

न केवलं यो महतोऽपभाषते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक्।

तो पार्वती उस ब्रह्मचारीके सान्निध्यसे दूर जानेका यत्न करने लगीं। शंकर-पर उनका ऐसा दृढ़ विश्वास था। किसीके बहकानेसे उनका प्रेम डिगनेवाला नहीं था। इस दृढ़ विश्वास या अनन्य निष्ठाका ही फल था कि शंकरने उन्हें स्वीकार किया। कालिदासने तो कह दिया है कि भगवान्‌ने अपनेको पार्वतीका 'क्रीतदास' घोषित किया—

अद्य प्रभृत्यवनताङ्गि
तवास्मि दासः
क्रीतस्तयोभिरिति
वादिनि चन्द्रमौलौ।
अह्नाय सा नियमजं
क्लममुत्ससर्ज।
क्लेशः फलेन हि
पुनर्नवतां विधत्ते॥

इस प्रसंगको महाविश्वासका एक सुन्दर उदाहरण मान सकते हैं।

[सावशेष]

नाचूँगी !

एक मनुष्य हमारे पास आता है तो हम सोचते हैं कि इसका हमारे पास आना-जाना ठीक है या नहीं। हम देखते हैं कि यह हमारी बात मानता है अथवा हमसे अपनी बात मनवाना चाहता है। यदि हम देखते हैं कि यह हठी है, अपनी बात हमसे मनवायेगा तो सोचते हैं कि इसके कारण हमारा एक बन्धन बढ़ेगा। उसके प्रति मनमें उपेक्षा आती है। यदि हम देखते हैं कि यह हमारी बात माननेवाला है तब लगता है कि इससे कोई भय नहीं है, यह समीप रह सकता है। किन्तु जो हठी स्वभावका है उसे देखकर लगता है—'आज इसने मेरी छोटी बात नहीं मानी तो हानि नहीं किन्तु कभी कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं मानेगा तो हानि होगी।'

ईश्वर भी देखता है कि यह मेरी इच्छानुसार चलनेवाला है या मुझे अपनी इच्छानुसार चलानेकी हठ करनेवाला। जो अपने मनके वशमें है वह साथ करने योग्य नहीं है। जब अपनी वासना घट जाय तब पुरुष महापुरुषके समीप जाने योग्य होता है। तुम भगवान्‌को क्यों चाहते हो? उनको अपनी इच्छानुसार नचानेके लिए अथवा स्वयं उनकी इच्छाके अनुसार नाचनेके लिए? मीराबाईने कहा है—

मैं गिरिधर आगे नाचूँगी।
नाच नाच पिय रसिक रिझाऊँ प्रेमी जनको जाचूँगी॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आश्रय-निष्ठा

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द जी सरस्वती

भारत वर्षमें बुक्क-साम्राज्य अपनी धर्मनिष्ठाके लिए अत्यन्त प्रसिद्ध रहा है। एकबार राजा बुक्कने अपने कुलगुरु एवं मन्त्री श्री माधवाचार्यसे प्रश्न किया—'महाराज आपने बड़े-बड़े शास्त्र मुझे सुनाये। वे सब सत्य हैं, मुझे कोई सन्देह नहीं; परन्तु जिनकी बुद्धि सीमित है उनके लिए वे बहुत गहन हैं। हमको कुछ सरल उपाख्यान सुनाइये।'

श्री माधवाचार्यने कहा—'मेरे भाई हैं सायणाचार्य। वे वेदोंके व्याख्याता तथा पुराणोंके प्रौढ़ पारदर्शी विद्वान् हैं। उन्हें मैं आज्ञा कर देता हूँ वे तुम्हें सुना देंगे। उन्होंने सायणाचार्यको आज्ञा दी। राजाने उनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सम्बन्धी शताधिक उपाख्यान सुनाये। उनमें-से एक उपाख्यान आपके सम्मुख प्रस्तुत है।'

सायणाचार्यने बुक्क नरपतिको सम्बोधित करके कहा—'राजन्! पुराणोंमें यह कथा प्रसिद्ध है कि भगवान्‌ने वामनका रूप धारण करके राजा बलिसे उनकी राज्यलक्ष्मी माँग ली। बलिने सहर्ष दे दिया परन्तु बात यहीं पूरी नहीं हुई। भगवती लक्ष्मी वामन भगवान्‌से रूठ गयीं: तुमने दैत्यलक्ष्मीको ग्रहण किया है। अब मैं तुम्हारे साथ कैसे रहूँगी? वामन भगवान् लक्ष्मीजीको सन्तुष्ट नहीं कर सके।'

घरका झगड़ा बाहर फैल गया। ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता इकट्ठे हुए। यह निर्णय हुआ—इस दोषकी निवृत्तिके लिए वामन भगवान्‌के साथ सब देवता तीर्थयात्रा करें। तब लक्ष्मीजी प्रसन्न हो जायेंगी और इनमें दिव्य लक्ष्मीको ग्रहण करनेकी शक्ति आजायेगी।

तीर्थयात्राके प्रसंगमें एक अत्यन्त सुन्दर पुष्करिणी मिली। उसमें सुन्दर-सुन्दर कमल खिले हुए थे। ऋषि, मुनि एवं देवताओंने अपनी अपनी रुचिके अनुसार उसमें-से कमल ग्रहण किये। उनमें-से एक सर्वश्रेष्ठ कमल जो सहस्र दलसे युक्त था महर्षि अगस्त्यने अपने लिए चुन लिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ समय बाद वह कमल नहीं मिला। किसीने सबकी आखें बचाकर उसे ले लिया था। महर्षिने एक-एकसे पूछा। सबने कहा—'हम उस कमलके बारेमें कुछ नहीं जानते।' इन्द्रने कहा—'जिसने बहुत-से यज्ञ किये और स्वर्गमें रहता है उसने वह कमल लिया होगा। सब समझ गये यह इन्द्रका काम है। अगस्त्य का कमल मिल गया। वे इन्द्र पर प्रसन्न हुए। यह बहुत धर्मात्मा है।

तीर्थयात्रा क्रमशः आगे बढ़ती गयी। यात्री देवता और ऋषियोंने देखा मार्गमें एक अत्यन्त सूखा वृक्ष है। उसके कोटरमें एक शुक तोता निवास कर रहा है। वह भूखा-प्यासा दुर्बल व्याकुल है। फिर भी उस वृक्षको नहीं छोड़ता है। इन्द्रने शुकसे प्रश्न किया—'पक्षिराज! यह वृक्ष तो अत्यन्त सूखा हुआ है। इसमें फल-फूल-पत्ता कुछ भी नहीं है। इससे तुम्हें भोजन-पान छाया कुछ नहीं मिलता। फिर इस पर क्यों रहते हो?' शुकने कहा—'महाराज! पहले यह वृक्ष साधारण वृक्ष नहीं, कल्पवृक्ष था। इसमें अमृत-रससे भरे हुए फल लगा करते थे। मैंने चिरकाल तक इसके आश्रयसे अपनेको जीवित रखा है। कालके प्रभावसे अब यह सूख गया और इसके पास कुछ नहीं है। ऐसी विपत्तिमें इसको छोड़कर मैं कैसे जा सकता हूँ? यह कृतघ्नता मुझसे नहीं होगी। इन्द्रने कहा—'शुक! तुम मूर्ख हो। अब इस वृक्षमें कोई सार नहीं है। इसने क्या जानबूझकर तुमको फल खिलाया है?' इस जड़के प्रति कृतघ्नता या कृतज्ञताका कोई अर्थ नहीं है। शुकने उत्तर दिया—'जड़-चेतना'का विभाग मिथ्या है। ब्रह्माने कर्मानुसार किसीको चर शरीर दिया है, किसीको अचर। माना कि वृक्ष अचर एवं अचेतन है फिर भी मैं तो सचेतन और समझदार हूँ। वह चाहे जैसा भी हो क्या अपनेको धर्मसे भ्रष्ट कर दूँ? ब्रह्माने प्रजाके उपकारके लिए वृक्षोंका निर्माण किया। जल, अग्नि और वायुके समान ही ये प्राणियोंका हित करते हैं। इनमें भी ज्ञान है, चेतना है, बुद्धि है। मैं अपने आश्रयका परित्याग नहीं कर सकता।

इन्द्रने कहा—'पक्षिराज, तुम धन्य हो, तुम्हें यह विज्ञान, ऐसी धर्मनिष्ठा किस तपस्यासे प्राप्त हुई है वह मुझे बताओ। शुकने उत्तर दिया—'देवराज मैंने आजीवन मित्र-द्रोह कभी नहीं किया। मृत्युके भयसे भी मैं धर्मनिष्ठासे विचलित नहीं हुआ हूँ। माता पिताकी सेवा की। घर स्त्रीका सहवास कभी नहीं किया। अपनी पत्नीका अपमान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं किया। किसीका अनादर नहीं किया। दूसरेका हक दवाया नहीं। इसीसे मुझे इस निर्मल विज्ञानकी प्राप्ति हुई है। इन्द्रने कहा—'पक्षिराज तुम्हारी इस सद्‌बुद्धि और धर्मनिष्ठा से मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम जो चाहो मुझसे वरदान माँग लो।' शुकने कहा—'महाराज, मुझे स्वर्ग, विमान या सुख नहीं चाहिए। आप वर देना चाहते हैं—यह आपकी वड़ी कृपा है। मैं आपसे यह वर माँगता हूँ कि मेरा यह आश्रय वृक्ष फिर वैसा ही हरा-भरा हो जाय। इन्द्र शुकके सद्‌भाव और धैर्यसे अतिशय प्रभावित हुए। उन्होंने वृक्षको अपनी शक्तिसे ज्यों-का-त्यों बना दिया। शुककी निष्ठा अपने आश्रय दाताका परित्याग न करना। यह ज्यों-की-त्यों वनी रही। इसीसे लोक-परलोक और परमार्थ सब बन गये।

ऐसे निष्ठावान् धर्मात्मा पक्षिराज शुकके सान्निध्य और आलापसे देवताओंकी तीर्थयात्रा सफल हो गयी और लक्ष्मीजी पुनः अपने आश्रय स्वरूप भगवान् वामनके वक्षःस्थल पर विराजमान हो गयीं। •

जो धूम्रपान नहीं छोड़ सकते…

नयी दिल्ली, ३ अप्रैल (यून्यू) जो धूम्रपान नहीं छोड़ सकते उनके लिए एक ही सलाह है कि वेहतर हो कि वे सिगरेट के बदले पाइप और सिगार पियें क्योंकि सिगरेट कैंसर, पुरानी खांसी और अन्य अनेक वीमारियोंका कारण बननेके अलावा हृदय रोगोंका खतरा भी पैदा करती है।

अखिल भारतीय हृदय संस्थानकी अध्यक्ष डॉ० एस० पद्मावतीने विश्व हृदय मासिक समारोह स्मारिकामें कहा है कि हृदयके लिए मद्यसार भी बहुत खतरनाक हो सकता है।

लेकिन आपने अपने लेखमें इस बातपर वल दिया है कि कम सिगरेट पीनेवालोंकी अपेक्षा अधिक सिगरेट पीनेवालोंकी मृत्यु दर अधिक है।

इस हृदयरोग विशेषज्ञने कहा है कि धूम्रपानसे हृदयकी धड़कन तेज हो जाती है, रक्तचाप बढ़ जाता है और चर्मकी रक्तकोशिकाएँ संकुचित हो जाती हैं, खासकर हाथों-पैरोंकी उँगलियोंमें।

आपने कहा कि धूम्रपान न करनेवालोंकी अपेक्षा धूम्रपान वालोंमें हृदयका दौरा पड़नेकी घटनाएँ तिगुनी हैं, आपने कहा कि सिगरेट पीना किसी भी उम्रके व्यक्तिके लिए बुरा है। (न. भा.टा.) •

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूर और नायकी स्वामी की मधुर भक्ति

डॉ० के० आर० विट्ठलदास, एम० ए०, पी० एच-डी०
प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग,
प्रेसिडेन्सी कालेज, मद्रास

जैसे सूरदास हिन्दी-साहित्यके कृष्ण-भक्त तथा संगीतज्ञ-कवि हैं वैसे ही श्रीमान् नटनगोपाल नायकी स्वामी भी तमिलनाडुकी सौराष्ट्री भाषाके प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त तथा संगीतज्ञ-कवि हैं। तमिलनाडुमें श्रीमन् नटनगोपाल नायकी स्वामीके लिए 'नायकी स्वामीगल' नाम ही व्यवहृत होता चला आ रहा है। नायकी स्वामीने सौराष्ट्री एवं तमिल भाषामें आलवार भक्तोंकी भाँति कृष्ण भक्तिसे सम्बन्धित पदोंकी रचना की है। परम वैष्णव भक्तके रूपमें उन्हें तेरहवे आलवार-भक्तका पद तमिलनाडुके जनमानसने प्रदान किया है। इनके जन्म-स्थान मदुरै नगरके वैष्णव मन्दिरोंमें द्वादश आलवारोंकी मूर्तियोंके साथ इनके विग्रहकी भी आराधना की जाती है। यद्यपि सूर और नायकी स्वामी के आविर्भावकाल में पर्याप्त अन्तर है (सूरका समय १६वीं शताब्दी तथा नायकी स्वामीका १९वीं शताब्दी है।) तथापि दोनोंकी जीवनी तथा भक्ति-साधनामें अद्भुत साम्य है।—सम्पादक

सूर और नायकी स्वामीके प्रारम्भिक तथा वैष्णव भक्तके रूपमें परिवर्तित उनकी जीवन-घटनाओंमें इतना अधिक साम्य है जो अन्य दो कवियोंमें दिखायी नहीं पड़ता। वल्लभाचार्यसे मिलनेके पश्चात् सूर वैष्णव भक्तिमें तन्मय हो गये और एक महान् कवि एवं संगीतकारके रूपमें उभरकर सामने आये। ठीक उसी प्रकार नायकी स्वामी वट-पत्रार्यसे मिलनेके पश्चात् वैष्णव भक्तिके एक देदीप्यमान रत्नके रूपमें ज्योतिर्मय बन गये। इतना ही नहीं, दोनोंकी भक्ति-साधनामें भी पर्याप्त साम्य उपलब्ध होता है। कलियुगमें केवल भक्ति ही सार है—इस बातको दोनों ही भली-भाँति जानते थे। अतः दोनों भक्त कवियोंने मुक्तिकी प्राप्तिके लिए ज्ञान, योग और कर्म-मार्गकी अपेक्षा भक्ति-मार्ग पर ही अधिक बल दिया था। दोनोंने अपने पदोंमें इस तथ्यका प्रतिपादन किया है कि मुक्तिप्राप्तिके लिए योग, यज्ञ और ज्ञान-चर्चा आदि अनेक साधनोंकी अपेक्षा नहीं है, एकमात्र भक्ति ही मुक्तिप्राप्तिके लिए पर्याप्त है। तप, ज्ञान, कर्म आदि किसी भी साधनसे भगवान् वशमें नहीं किये जाते; केवल भक्तिसे ही वे भक्तोंके वशीभूत होते हैं। मानव जीवनकी सर्वाधिक सफलता भगवद्-भक्तिमें ही निहित है। भक्ति वह संजीवनी है जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनुष्यको सज्ज्योति एवं अमृतमय बना देती है।

सूर और नायकी स्वामीके काव्यमें वैधी भक्ति, दास्य, वात्सल्य, मधुर, शान्त आदि भाव-भक्तिके पद उपलब्ध होते हैं। सूर पहले कृष्णके बालरूपके उपासक रहे और श्रीविट्ठलनाथके सम्पर्कमें आनेके पश्चात् राधाकृष्णकी युगलमूर्ति तथा राधाके भी उपासक बन गये। दैन्य और विनयसे प्रारम्भकर 'पोषण अनुग्रह' से होते हुए वे सख्य और वात्सल्यमें लीन हुए। तदनन्तर वत्सलसे आगे बढ़कर माधुर्यकी सीढ़ीसे चढ़ते हुए वे दाम्पत्य या कान्ता-भाव तक पहुँचे। नायकी स्वामी श्रीसम्प्रदायमें प्रविष्ट होनेके पूर्व योगी-जीवन बिताते रहे। वैष्णव भक्तमें परिणत होने पर गुरुवर वटपत्रार्यके अनुग्रहसे उन्होंने नवधा भक्तिके मर्मको समझा और रागानुगा भक्तिके अन्तर्गत प्रेमा भक्तिकी ओर वे विशेष रूपसे आकृष्ट हुए। सूरकी तरह दैन्य और विनयसे प्रारम्भकर माधुर्यकी सीढ़ीसे चढ़ते हुए वे कान्ता-भाव तक पहुँचे। सूरने अनुगा-भावकी माधुर्योपासना की थी तो नायकी स्वामीने प्रत्यक्ष कान्ता-भावकी माधुर्योपासना की थी। पुरुष होने पर भी बाहर एवं भीतरसे पूर्णरूपसे स्त्री बनकर कान्ता-भावसे अपने इष्टकी उपासना करनेमें नायकी स्वामीके व्यक्तित्वकी विशिष्टता निहित है। उनके इसी व्यक्तित्वकी विशिष्टताके कारण वे 'नटनगोपाल नायकी' नामसे अत्यन्त प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार दोनोंके व्यक्तित्वमें भक्तिका आवेश प्रधान रूपसे व्याप्त था और उनके जीवनकी सब स्थितियोंमें भक्ति-तत्त्वकी प्रधानता बनी रही।

मधुर भाव-भक्ति शान्त, सख्य, दास्य, वात्सल्य आदि समस्त भावोंसे मधुरतम है। इसमें भक्त और भगवान्के बीच एक आध्यात्मिक दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित होता है। उपास्य और उपासकमें किसी भी प्रकारकी दूरी इसमें नहीं रह जाती। 'यह मेरे बने रहें और मैं उनका' इस प्रकारकी मानसिक स्थिति भक्तके मनमें अवश्य बनी रहती है। इसमें विधि अथवा विधानका सर्वथा परित्याग कर दिया जाता है। वैधी भक्ति वह धारा है जो अपने दोनों किनारोंसे बँधी रहती है; परन्तु मधुर भक्ति वह बाढ़ है जो किनारोंके बन्धनको नहीं मानती। परमात्माके साथ किसी प्रकारके यौन-सम्बन्धका आरोपकर उसे तदनुकूल प्रभावके बन्धनमें डालनेका प्रयास करना बहुत कुछ अनुचित प्रतीत होता है, फिर भी मधुरोपासक भक्त इसकी परवाह नहीं करता। उसे अपने मोक्षका यत्न करते समय विशुद्ध कामसे सहायता लेनेमें किसी प्रकारके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनौचित्यका बोध नहीं हुआ करता। मधुर भक्ति द्वारा वह अपने इष्ट देवके सान्निध्यके सुखका सदा सर्वदा अनुभव करते रहना चाहता है। अपने इष्टदेवके साथ अपनी आत्मीयताका भाव मधुर भक्ति द्वारा सुदृढ़कर उसका अधिकसे अधिक 'अपना' हो जानेकी वह अत्यन्त कामना करता है। ऐन्द्रिय विषयोंमें अनुरक्त लोगोंको विषय-वासनासे छुड़ानेके लिए भक्ति-शास्त्रके आचार्योंने भगवान्को ही उनकी विषय-तृप्तिका साधन बताया है। मधुर रसमें प्रेमका आलम्बन लोकनायक न होकर ईश्वर या उसका कोई अवतरित स्वरूप होता है। ज्ञानी साधकोंने भगवान्के प्रति अपने मधुर भावके आध्यात्मिक सम्बन्धकी अनुभूतियोंको लौकिक शृङ्गारकी भाषा एवं अन्योक्तियोंमें प्रकट किया है।

संसारके विषय-चक्रमें भ्रमित मानवके धर्माचरणमें सदा 'काम' ही बाधक बना रहता है। उस 'काम'से बचनेके लिए भक्तलोग अपनी समस्त इन्द्रियोंका आलम्बन परमात्माको बना लेते हैं। उनकी आँखें लोकरूपसे हटकर भगवान्की रूप-माधुरीपर केन्द्रित हो जाती हैं, जिह्वा भगवान्के अधरामृतका पान करना चाहती है, त्वचा उनके आनन्दकारी स्पर्शसे रोमाञ्चित होना चाहती है और अन्तःकरण उनके साथ रमणसे तृप्ति-लाभ प्राप्त करनेके लिए आकुल रहता है। इस प्रकार भक्त इन्द्रिय-सुख प्राप्त करनेकी अपनी चित्तवृत्तिको उससे हटाकर ईश्वरकी ओर उन्मुख-कर देता है। मधुर रसके उद्रेकके लिए भक्तोंके अन्तःकरणकी उदात्त अवस्था अनिवार्य है। मधुर रस भक्ति चित्तके लिए भक्ति ही है; किन्तु विषयी चित्तके लिए शृङ्गार है।

भक्तिमूलक शृङ्गारको लौकिक शृङ्गारके समान चित्रित देखकर अधिकांश लोग नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं और आवेशमें आकर कह उठते हैं कि भक्तकवि मधुर भावका चित्रण करते समय अनेक स्थानों पर अपनी ही शारीरिक एवं मानसिक कुण्ठाओंकी अभिव्यक्ति कर बैठता है किन्तु यह धारणा नितान्त गलत है। दाम्पत्य रति जीवकी सबसे व्यापक और तीव्र अनुभूति मानी जाती है। जीवनका कण-कण काम-भावसे परिचालित है। भगवद् विषयक शृङ्गारके चित्रणमें इस कामका उदात्तीकरण हो जाता है। स्त्रीमें आत्म-समर्पणका आधिक्य भी भक्तिके क्षेत्रमें शृङ्गारको लानेके मूल कारणोंमें एक हो सकता है। जिसप्रकार वैद्य गुड़का लेपनकर कड़वी दवा रोगीको प्रदान करता है उसीप्रकार भक्त कवि भी शृङ्गाररूपी गुड़का लेपनकर भगवद्-भक्तिकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मधुर रसकी साधना-प्रणाली अत्यन्त कठिन है। इस साधनामें मानसिक सेवा और तदनुकूल संकल्प ही प्रमुख है। इसमें स्मरणको ही प्रधानता दी जाती है। गोपी भावकी उपासना करनेवाले उपासकको अपनेको रूप और यौवनसे सम्पन्न परम मनोहर किशोरीके रूपमें सिद्ध देहसे भावना करनी पड़ती है। विविध कलाओंमें प्रवीण श्रीकृष्ण द्वारा अपनेको उपभोगके योग्य समझते हुए सदा-सर्वदा मानसी सेवामें उसे रत रहना चाहिए। मधुर रसकी ठीक-ठीक धारणा इन्द्रियोंसे तो हो ही नहीं सकती, मन और बुद्धिसे भी नहीं हो सकती। केवल आत्मासे ही उसकी धारणा सम्भव हो सकती है। शरीर, मन एवं बुद्धिकी अपेक्षा आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व है। इसीलिए मधुर भावकी उपासना अत्यन्त दुरूह मानी जाती है। वह बाह्य आलम्बनपर आश्रित न होकर अन्तर भावके ऊपर अवलम्बित होती है।

गोपी भाव स्त्री-सुलभ बाह्य वेषके ऊपर आश्रित नहीं होता। उसे एक उदात्त आन्तरिक भाव कह सकते हैं। श्रीकृष्णके चरणारविन्दमें अपने समस्त आचार-व्यवहार, कार्य-कलाप, धर्म-कर्मका पूर्ण समर्पण तथा उनके विरहमें परम व्याकुलताकी भावना—गोपी भावके दो प्रधान लक्षण माने जाते हैं। कृष्णके विरहमें इतनी तड़पन हो, इतनी व्याकुलता हो कि संसारके कार्योंसे चित्त सिमटकर उसी व्याकुलताकी दशामें भक्त आत्म-विभोर हो उठे। मधुर भावकी उपासनाके भक्तोंका मन ईश्वरमें रमा हुआ रहता है। भगवान् ही उनके प्राण हैं। भगवान्के लिए वे अपने समस्त देहकार्योंका विसर्जन कर देते हैं तथा लोक धर्मोंका भी परित्याग कर देते हैं। उनकी आत्मा भगवान्के साथ और भगवान् उनके साथ एकाकार हो जाते हैं।

शृङ्गार भावकी तरह मधुर भाव भी दो प्रकारका होता है—संयोगात्मक और वियोगात्मक। काव्यशास्त्रमें संयोग-वियोगकी जो अवस्थाएँ मानी गयी हैं वे ही अवस्थाएँ भक्ति शास्त्रमें भी कही गयी हैं।

स्वयं वल्लभाचार्यने अपनी भक्ति-पद्धतिमें माधुर्य भावका समावेश किया था। इनकी भक्तिमें बाल, किशोर, दाम्पत्य और परकीय कान्ता-भाव—इन सभी प्रकारकी भक्तिका समावेश है। आगे चलकर वल्लभाचार्यके पुत्र विट्ठलनाथजीने 'स्वामिन्याष्टक' और 'स्वामिनी-स्तोत्र' लिखकर राधाका भी समावेश इस भक्ति-पद्धतिमें किया। मधुर भक्तिका साक्षात् रूप विट्ठल महाप्रभुके समयमें ही प्रकट हुआ। वल्लभ-सम्प्रदायके भक्त कवियोंने युगलकी लीलाका गान पूर्ण मनोयोगके साथ किया है। इस सम्प्रदायके भक्तोंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान् श्रीकृष्णके अखण्ड सहवासको प्राप्त करनेके लिए गोपी भाव एवं स्वकीय भावसे उसकी उपासना की है। परकीय मधुर-भाव स्वकीयकी अपेक्षा बहुत ही स्वल्प प्रमाणमें इन भक्तोंमें उपलब्ध होता है।

सूर श्रीकृष्णके मधुर स्वरूपके अन्यतम चित्रकार हैं। उनके काव्यमें मधुर भावका विकास और विस्तार पूर्णतः पाया जाता है। उन्होंने राधा एवं गोपियोंके माध्यमसे मधुर-भावकी अभिव्यञ्जना की है। परकीय भाव-वाले पदोंकी अपेक्षा स्वकीय भाववाले पद ही 'सूरसागर'में अधिक मिलते हैं। मधुर-भक्तिका प्रतिनिधित्व करने-वाली सूरकी गोपिकाएँ कृष्णमें इतनी लीन हो जाती हैं कि उनका काम, निष्काम रूपमें परिणत हो जाता है। सूरने गोपी-प्रेमके प्रारम्भ, विकास और उसकी परिणतिका अप्रतिम वर्णन प्रस्तुत किया है। रससिद्ध कवि सूरने नव-नव प्रसङ्गोंकी उद्भा-वना करनेवाली अपनी अद्भुत प्रतिभा-से राधा-कृष्ण एवं गोपियोंके प्रेमके क्रमिक विकासको अपूर्व कौशलसे उपस्थित किया है। 'सूरसागर'में मधुर रतिके आत्मसमर्पण, अनन्यता आदि भाव 'चीरहरण', 'रास' आदि लीलाओंमें क्रमशः विकसित होकर 'दानलीला'में पुष्टताके चरम-विन्दु तक पहुँच गये हैं। सूरकी मधुर भक्तिका वियोग-पक्ष संयोगसे अधिक तीव्र, उज्ज्वल, पुष्ट एवं गम्भीर है। वियोगकी अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता आदि काम-दशाओं तथा विरहव्यथासे शारीरिक व्यापारोंमें उत्पन्न होनेवाले व्यतिक्रमों-का सूरने गम्भीरतापूर्वक विशद वर्णन किया है।

मीरा और गोदाकी भाँति सूरने प्रत्यक्ष कान्ताभावसे अपने इष्टकी उपासना नहीं की थी ; अपने उपास्यके प्रति प्रेम-निवेदन करनेके लिए उन्होंने अनुगा कान्ता-भावको अप-नाया था। अर्थात् मध्यस्थ बनकर अत्यन्त रसमयताके साथ गोपी-कृष्णकी प्रेम-लीलाओंका भावपरक चित्रण उन्होंने किया है।

नायकी स्वामीके मधुर भावकी उपासनापर आलवार भक्तोंकी माधुर्य-भक्ति तथा 'श्रीमद्भागवत' में चित्रित मधुर-भावका प्रभाव पड़ा है। नायकी स्वामी नम्मालवार (परांकुशनायकी) तिरुमंगैयालवार (परकालनायकी) तथा आण्डाल (गोदाकी) माधुर्य उपासनासे विशेष रूपसे प्रभावित हुए थे। 'नायकी स्वामिगलिन संकीर्तनंगल' में भक्त और भगवान्‌के बीच स्त्री-पुरुष सम्बन्धको घोषित करनेवाले बहुत-से पद हैं। लोकमें प्रेमके जितने भी भिन्न-भिन्न सम्बन्ध हो सकते हैं उन सबको नायकी स्वामीने लोकसे हटाकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ईश्वरके साथ जोड़ा है। तमिलनाडुके आलवार भक्तोंने ही नायक-नायिकाके सम्बन्धको सर्वप्रथम भक्तिके क्षेत्रमें स्वतन्त्र रूपसे प्रतिष्ठापित किया था। नायकी स्वामीने आलवारोंके प्रेम-काव्यकी पद्धतिका पूर्ण-रूपेण अनुकरण किया है। कृष्णभक्तिके क्षेत्रमें गोपियाँ स्त्री-भावका प्रतिनिधित्व करती हैं। नायकी स्वामीकी दृष्टिमें समस्त मानव-जाति स्त्रीकी कोटिमें है और वही आदि पुरुष कृष्ण एकमात्र पुरुष हैं। माधुर्य-भक्तिके स्वकीया पक्षको ही उन्होंने अपनाया था। प्रेम-पीड़िता नारीकी विभिन्न भावावस्थाओंका सुन्दर चित्रण इनके पदोंमें हुआ है।

नाम्मालवार, तिरुमंगैयालवार, मीरा एवं आण्डालके समान नायकी स्वामीने प्रत्यक्ष अथवा शुद्ध कान्ता भावसे अपने इष्टकी उपासना की थी। नायकी स्वामीके काव्यमें प्रेमकी वियोगावस्थाका ही अधिक विस्तार है। उनके गीतोंमें जो आध्यात्मिक प्रेमका भाव चित्रित किया गया है उसमें कहीं तो अपने इष्टसे मिलनेके लिए उत्कट अभिलाषा व्यक्त की गयी है, कहीं विरहकी पीरकी अभिव्यक्ति हुई है और कहीं कृष्ण-मिलन-सुखका आनन्द व्यञ्जित हुआ है। कभी वे इष्टके सौन्दर्य एवं मनोहारितापर रीझ जाते हैं, कभी कान्ता-भावसे कृष्ण-मिलनके लिए आतुर दिखायी देते हैं, कभी प्रेमकी पीरसे मर्मवाणी सुनाते हैं और कभी प्रियतमके यहाँ सन्देश भिजवाते हैं। रातभर प्रियतमके मिलनकी आशामें वे टकटकी लगाये रहते हैं, कभी प्रियतमके आलिङ्गन जनित सुखमें आत्म-विभोर हो उठते हैं। कभी प्रियतमकी निष्ठुरता पर करुण क्रन्दन करते हैं और वियोगावस्थामें अपनी दयनीय स्थितिका वर्णन करते हैं। मिलनके लिए तड़पते हैं। अपने इष्टकी निर्दयता, कपटपूर्ण व्यवहार आदिका उपालम्भ भरे शब्दोंमें वर्णन करते हैं। इसप्रकार अपनेको कृष्णके मिलनकी भूखी एक गोपी स्त्रीका अवतार समझकर प्रेम-पीड़ित नारीकी विभिन्न भावावस्थाओंका सुन्दर चित्रण उन्होंने अपने काव्यमें किया है। आलवार भक्त कवियोंकी भाँति नायकी स्वामीने भी अपने समयकी पूर्ववर्ती प्रेम सम्बन्धी काव्य-रूढियोंसे लाभ उठाकर लौकिक प्रेमके स्थानपर अलौकिक प्रेम अर्थात् भक्त और परमात्माके मधुरभावके सम्बन्धको स्पष्ट किया था। 'तोलकाप्पियम्' तमिलमें उपलब्ध सबसे प्राचीन ग्रन्थ है जिसमें प्रेमी जीवनसे सम्बन्धित प्रसंगोंका सविस्तार वर्णन किया गया है। आलवार भक्तोंमें विशेषकर नम्मालवार, तिरुमंगैयालवार, कुलशेखरालवार एवं आण्डालने 'तोल्काप्पियम्' में वर्णित प्रेम-काव्यकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पद्धति पूर्ण रूपसे अपनायी थी।

नायकी स्वामीने ईश्वरसे जितने भी सम्बन्ध स्थापित किये हैं उनमें नायक-नायिकाका सम्बन्ध अधिक महत्त्वका है। इस मधुर भावको काव्य रूप देनेके लिए नायकी स्वामीने लौकिक प्रेम-काव्यके क्षेत्रमें प्रचलित समस्त रूढ़ियोंका सहारा लिया और उनके माध्यमसे अलौकिक प्रेमकी अभिव्यक्ति की है। 'नालायिरदिव्य प्रबन्धम्' में नायक-नायिका सम्बन्धके संयोग-वियोग दोनों पक्षोंकी जिन दशाओंका आलवार भक्तों द्वारा निर्वाह किया गया है उन सबका नायकी स्वामीने भी अपने काव्यमें प्रयोग किया है।

सूर और नायकी स्वामीके पदोंमें व्यक्त राधा एवं गोपियोंके प्रेमके भीतर दोनों भक्त कवियोंकी अन्तरात्मा छिपी है। राधा एवं गोपियोंके संयोग-वर्णनमें उनका अन्तःकरण संयोगसुखके आनन्दमें गोते लगाता है और वियोग-चित्रणमें दोनों भक्तकवि प्रिय-मिलनकी बातको लेकर अत्यन्त व्याकुलताका अनुभव करते हैं।

सूरने अपने उद्गारोंको नाना माध्यमोंसे व्यक्त किया है। किन्तु सबसे अधिक प्रभावशाली ढंगसे वे अपनेको राधामें ही व्यक्त कर सके हैं। उनका भक्तचित्त सबसे बढ़कर राधिकाके रूपमें अभिव्यक्त हुआ है। शृङ्गार रसके संयोग-पक्षकी जितनी भी दशाएँ सम्भव हो सकती हैं और उन दशाओंमें नायक-नायिकाके हृदय-में जितने भी भावोंका उदय हो सकता है उन सबकी मार्मिक अभिव्यञ्जना 'सूरसागर'में हुई है।

संयोग-वर्णनमें सूरने सहज स्वच्छन्दताका अभ्यास किया है। सुख-विलासके वर्णनोंमें उनको कथमपि सन्तोष नहीं होता। चाहे गोपियोंकी सामूहिक लीलाएँ हों, चाहे राधारमण-का एकान्त प्रसङ्ग हो, कहीं भी उनकी लेखनी संकोच करना नहीं जानती। सूरसागरमें कहीं प्रथम समागमका वर्णन है, कहीं विपरीत रतिका और कहीं शृङ्गार-सज्जाका। सुरत-समय तथा सुरतान्तके बादकी व्रीडा, संकोच आदि मनःस्थितियोंका भावपूर्ण एवं स्वाभाविक चित्रण सूरने अपने पदोंमें किया है। 'मानखण्डिता' आदि प्रसङ्गोंमें उन्होंने सुरतका विस्तृत वर्णन किया है जिसमें सुरत समयकी प्रायः सभी मनोदशाओंका सूक्ष्म अंकन मिलता है। राधा-कृष्णके सौन्दर्य-चित्रोंका अङ्कन उनके संयोग-वर्णनकी एक प्रमुख विशेषता रही है। सामूहिक लीलाओंमें भी सूर अवसर पाते ही राधा-कृष्णको अलग कर लेते हैं और उनके रूप-सौन्दर्यकी नाना छवियोंकी प्रदर्शनी सजाने लगते हैं। वे राधाके उत्फुल्ल यौवनके चित्रणमें परम तन्मय हो उठते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नायकी स्वामीने संयोग-शृङ्गार-की भावनाओंको अभिलाषा द्वारा मानसिक जगत्के काल्पनिक मिलनमें अभिव्यक्त किया है। उन्होंने अपने इस काल्पनिक संयोग-सुखको नायिका-की वियोगावस्थामें प्रकट किया है। इस प्रकारका संयोग काव्य-शास्त्रमें 'वियोगमें संयोग' कहलाता है। 'वियोगमें संयोग'के जो कुछ भी चित्र उनके पदोंमें मिलते हैं वे संयोगकी परिस्थितियोंमें नायकी स्वामीकी मनो-दशाओंको चित्रित करनेमें सफल हुए हैं।

नायकी स्वामीने 'वियोगमें संयोग'के प्रसङ्गोंके चित्रणमें अपने अन्तःकरण-की मधुर रतिकी प्रगाढ़ अनुभूतिका परिचय दिया है। अपने व्यक्तित्वमें नायिका भावका आरोपकर उन्होंने संयोगावस्थाकी अपनी अनुभूतिको मार्मिक ढंगसे व्यक्त किया है। वियोगावस्थाके अन्तर्गत भावमय संयोगकी स्थितिको भक्तोंने सायुज्य-मुक्तिके अनुरूप प्रकट किया है। नायकी स्वामीने अपनेको कृष्णकी स्वकीया मानकर मधुर भावकी उपा-सना की है। सूरकी तरह उन्होंने भी कृष्णके अखण्ड सौन्दर्यका चित्रण किया है। उन्होंने श्रीकृष्णको एक रसिक, नागर एवं विलासप्रिय नायकके रूपमें चित्रित किया है। कृष्णकी रूप-माधुरी एवं विनोदशीलतासे मुग्ध होकर वे उनके हाथों बिक जाते हैं।

शृङ्गारकी स्थूलताको लेकर विचार किया जाय तो नायकी स्वामी-में सूरकी भाँति विपरीत-रति, जार-प्रेम आदिके अमर्यादित भाव उपलब्ध नहीं होते हैं।

सूर और नायकी स्वामीके संयोग-शृङ्गार वर्णनके कतिपय उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये गये हैं :

हरषि पिय प्रेम तिय अंक लीन्ही।
प्रिया बिनु वसन करि, उलटि धरि भुजनि भरि,
सुरति रति पूरि, अति निव्रल कीन्ही॥
आपनै कर नखनि अलक कुरवारहीं,
कबहु बाँधै अतिहि लगत लोभा।
कबहुँ मुख मोरि चुंबन देत हरष ह्वै,
अधर भरि दसन वह उनहिं सोभा॥
सूर प्रभु नवल-नवला, नवल कुंज गृह,
अंत वहिं लहत दोउ रति विहारैं।[1]

---

१. सूरसागर, प. २६०६ (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्भोग-शृङ्गारके स्थूल भावोंका चित्रण सूर अपने एक पदमें इस प्रकार करते हैं।

वसन तनु दूरि करि, सबल भुज अंक भरि,
काम-रिस बस वाम निदरि धायौ।
अधर दसननि भरे, कठिन कुच उर लरे,
परे सुख सेज मनु मुरछि दोऊ॥
मनौ कुम्हिलाइ रहे मैन सौं मल्ल दोउ,
कोक परवीन घटि नहीं कोऊ॥
अंग विह्वल भये, नैन नैननि नये,
लजित रति अन्त तियकन्त भारी।
सूर धनि धन्य सुखमा-नारि-वस स्याम,
जाम जुग भई पति तैं न न्यारी॥[1]

सूरकी भाँति नायकी स्वामीके पदोंमें भी सम्भोग-शृङ्गारके स्थूल भावोंका सन्निवेश प्रचुर रूपमें मिलता है :

सेलैये नीक्कियेन्नैच्चेरुम् सीलनैप्पाराय्।
आलैक्करुं बदुपोल नान् आनेन् अल्लल् तीराय्॥[2]

तनसे वस्त्र दूरकर हरि मुझसे रति-रमण किया करते थे। रति-संग्राममें कोल्हूमें पिसे हुए गन्नेके समान मेरे शरीरकी अवस्था हो जाती थी।

कट्टि मुत्तम् तन्द तंगक्कट्टियडि पोडी।[3]

अङ्कोंमें भरकर चुम्बन द्वारा आनन्द प्रदान किया करते थे।

कट्टिलिन् मेल् नानिरुक्क
गेट्टिक्कारन येप्वड़ियो
तिट्टिवाचल वलिवन्दु
कट्टियणैत्तेकिनाने[4]

सेजपर मैं लेटी हुई थी। उस समय रति-रण-धीर श्रीकृष्णने बड़ी चालाकीसे पिछवाड़ेसे भीतर आकर मुझे अपने अंकोंमें भर लिया और कोक-कलाके गुणोंको प्रकटकर मुझसे रति-विहार किया।

---

१. सूरसागर, प. ३११५।
२. नायकी स्वामिगलिन् संकीर्तनंगल, पृ. २५२।
३. वही, पृ. २४३।
४. वही, पृ. २६३।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्माण्ड : एक भ्रम मात्र

फरहत कमर, एम० ए०

मैं आजकल उस स्थानपर हूँ जहाँ मेरा जन्म हुआ था। पिछले दस वर्षोंमें यहाँ लगभग हर बातमें वृद्धि हो गयी है परन्तु जब भी मैं यहाँ आता हूँ मुझे एक कमीका आभास होता है और वह कमी है एक व्यक्तिकी ! वे थे वैद्य नन्द-किशोरजी, मेरे अप्रत्यक्ष रूपसे गुरु ! वे एक साधारणसे महान् व्यक्ति थे जिन्होंने बहुत दिनों तक मुझको जीवनकी छोटी-छोटी महानताओंका आभास कराया करते।

कोई बारह वर्ष पहलेकी बात आज अनायास ही मुझे उनकी दुकानके सामनेसे गुजरते हुए याद आगयी। मैं उनके पास बैठा बातें कर रहा था कि किसी गाँवसे एक रोगी उनके पास आया। वैद्यजीने उसकी नाड़ी देखी और अपने सहा-यकको दवा बनानेके लिए कह दिया। गाँवका वह सीधा-सादा व्यक्ति दुकानमें इधर-उधर देखने लगा और फिर उसकी दृष्टि फर्शपर रखी दवाओंकी कुछ बोतलों, शीशियोंपर जम कर रह गयी। लगभग सारी शीशियाँ गहरे कत्थई रंगकी थीं और इस कारणसे उनमें इधर-उधरकी वस्तुओंका प्रतिबिम्ब साफ पड़ रहा था। वह व्यक्ति बहुत देर तक उन शीशियोंको आश्चर्यविमोर-सा ताकता रहा और फिर उससे रहा न गया।

'वैद्यजी ! यह शीशियोंमें नीमके फूल कैसे नाच रहे हैं ?' उसने आश्चर्यसे पूछा और वैद्यजीने अपने विनोदी स्वभावके अनुसार उत्तर दिया—'भाई ! मैं जादू जानता हूँ।'

रोगीके चेहरेपर असन्तोषकी लकीरें स्पष्ट थीं।

थोड़ी देर उसके भोलेपनसे मन ही मन आनन्द लेनेके पश्चात् वैद्यजीने उससे ऊपर देखनेको कहा। उसने ऊपर छतकी ओर देखा और मेरी दृष्टि भी स्वाभाविक रूपसे ऊपरकी ओर उठ रही थी। छतका पंखा चल रहा था। रोगीने कई बार ऊपर पंखेको और नीचे बोतलोंको देखा और बात उसकी समझमें आगयी।

छतमें लगे बिजलीके पंखेका प्रतिबिम्ब बोतलोंके उभरे हुए भागपर पड़ रहा था। पंखेमें गति थी अतः प्रतिबिम्ब भी गतिशील था।

बात सीधी-सी लगती है परन्तु यदि हम इसका विश्लेषण करें तो ज्ञात होगा कि बात मेरे और वैद्यजीके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिए सीधी थी क्योंकि बिजलीका पंखा हमारे जीवनमें शामिल था—हमारे अनुभवक्षेत्रमें था। गाँवसे आया वह रोगी बिजलीका पंखा अपने आस-पास देखने या प्रयोग करनेका अभ्यस्त नहीं था। उसके अनुभवमें ही जब यह चीज नहीं थी तो वह बोतलमें पड़ते पंखेके प्रतिबिम्बको पंखेसे सम्बन्धित भी कैसे करता? उसने तो अपने आस-पास नीमके फूल ही देखे थे। वह गतिशील प्रतिबिम्बोंको नीमके फूल ही समझा। उसके दृष्टिकोण तथा उसके बुद्धिक्षेत्रके अनुसार एक नयी बातकी यही व्याख्या स्वाभाविक थी। वह जिस चीजको जानता ही नहीं था उसके बारेमें सोच भी कैसे सकता था?

रोगीके चले जानेके पश्चात् वैद्यजीने इस साधारण-सी घटनाको दर्शनशास्त्रकी सीमामें घसीट लिया—'देखा फरहत साहब! यह है वह बात जो जीवनभर मानव बुद्धिपर पर्दा रखती है। कोई वस्तु या कोई बात हमारे सामने प्रत्यक्ष रूपसे प्रस्तुत होती है परन्तु हम उसको ठीक ढंगसे समझ नहीं पाते। अपने अनुभवोंकी पृष्ठभूमिमें हमारी कल्पना उसकी जो व्याख्या प्रस्तुत करती है, हम उस वस्तु या बातको वही समझ लेते हैं। यह सब ज्ञानेन्द्रियोंका धोखा है। इसीलिए जो देख-सुन रहे हो उसपर भी पूर्ण विश्वास न करो।'

यह भ्रम साधारण-सी बात है। हर व्यक्तिको प्रायः इसका अनुभव होता रहता है। कभी-कभी वह समझ भी लेता है या बादमें उसको पता लग जाता है कि यह उसका भ्रम था परन्तु बहुधा वह भ्रमग्रस्त ही रह जाता है।

यही भ्रम (इलुजन) मरुस्थलको झील और दीवारपर रखे स्थिर पत्थरको चोरका हिलता-डुलता सिर बनाकर हमारे सामने प्रस्तुत कर देता है। यह भ्रम अपने कानोंसे सुनी बातको भी गलतफहमीमें बदल देता है क्योंकि हमने वह बात उसके वास्तविक सन्दर्भमें न सुनकर उसको अपने विचारोंके साँचेमें ढाल लिया था। इसी धोखेमें आकर किसी अनजाने व्यक्तिको अपना मित्र समझ बैठते हैं और इसीके प्रभावसे हमें समानान्तर रेखाएँ असमानान्तर लगती हैं।

भ्रमका एक अन्य आधार भी होता है जिसका सम्बन्ध हमारी ज्ञानेन्द्रियों, हमारे अनुभवों तथा हमारी कल्पना शक्तिसे न होकर बाह्य साधनों तथा कारणोंपर होता है। जैसे स्वच्छ जल कम गहरा दिखाई देता है, उसमें पड़ी सीधी छड़ी टेढ़ी-मेढ़ी दिखाई देती है और तारे आकाशमें हिलते-डुलते दिखाई देते हैं। वास्तवमें पानीकी गहराई और छड़का टेढ़ापन इस वैज्ञानिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथ्यके कारण है कि पानीमें प्रकाशकी किरण तिरछी होकर चलती है और तारे इसलिए हिलते लगते हैं क्योंकि उनके और हमारी दृष्टिके बीचके लाखों मील गतिशील गैसोंसे भरे पड़े हैं।

भ्रम चाहे हमारी अपनी कल्पना शक्तिके कारण हो या किसी बाह्य साधनके कारण, इसमें सन्देह नहीं कि हम जीवनभर नानाप्रकारके भ्रमोंमें फँसे रहते हैं। हमारी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ हमको धोखा देती रहती हैं। हम 'वेले'की सुगन्धको 'मोगरे'की सुगन्ध समझ सकते हैं और नीमकी पत्तीके स्वादको करेलेके स्वादसे जोड़ सकते हैं। हमारे छूनेकी ज्ञानेन्द्रियाँ भी अन्धेरे या अज्ञानके कारण भ्रमग्रस्त होती रहती हैं—हम शरीरके अन्दर पैदा होनेवाली सनसनीको चींटीका रेंगना समझ बैठते हैं।

'समस्त ब्रह्माण्ड भ्रमग्रस्त है, माया जाल है!

तब भ्रमसे छुटकारा कैसे प्राप्त हो सकता है?

इसके लिए चाहिए—छठीं ज्ञानेन्द्रिय।

इसे आप आन्तरिक दृष्टि भी कह सकते हैं।

और यही कहलाता है आत्मिक वल या आत्माका उत्थान!

'आत्मिक वल' या 'मनकी आँखों'के बारेमें आज विज्ञान तथा मनोविज्ञान मिलकर खोज कर रहे हैं और ऐसा लगता है कि आइन्सटाइनका यह कथन सच होगा कि विज्ञानकी अन्तिम खोज आत्माकी खोज होगी।

परन्तु हम समयकी प्रतीक्षा क्यों करें? हम पश्चिमकी ओर क्यों देखें? पूर्वी दार्शनिकोंने तो हजारों साल पहले हमें वह मार्ग दिखा दिया है जिसपर चलकर हमारे मनकी आँखें खुल सकती हैं। हम ज्ञानेन्द्रियोंके भ्रम जालसे निकल सकते हैं।

वह कौन-सा मार्ग है?

वह मार्ग है धर्म तथा साधनाका मार्ग!

धर्मका रहस्य कर्त्ताकी बुद्धिमें होता है, क्रिया अथवा वस्तुमें नहीं। जो कुछ करनेको रोका गया है वही करने जाते हो तो वासनाके वशीभूत होकर ही करने चले जाते हो। अपने मनके दास बने हुए तुम उस समय अपने विवेकका अनादर कर देते हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीता-दर्शन

: २ :

प्रवचन : अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज
आयोजन : श्रीमती सरला बसन्तकुमार बिरला
सङ्कलन : श्रीमती सतीशबाला महेन्द्र जेठी

अब हम गीताके छठे अध्यायमें प्रवेश करते हैं। ज्ञान और आनन्दका वाङ्मय उल्लास संगीत है। हम जो संगीत गावें, उसका कुछ अर्थ भी होना चाहिए और उसमें आनन्द भी आना चाहिए। केवल ताल-लय-स्वरकी जो गति है, उससे विश्राम मिलता है, शक्तिकी वृद्धि होती है और उसमें जो अर्थामृत होता है, वह शाश्वत प्रेरणा देता है। इसलिए संगीतमें केवल ताल, लय, स्वरका ही समावेश नहीं होना चाहिए। उसमें अर्थका भी अभिप्रायका भी सन्निवेश होना चाहिए। भगवान् श्रीकृष्ण संगीत-विद्यामें बड़े निपुण थे। उनकी वंशी तो प्रसिद्ध ही है। परन्तु केवल बाँसुरी नहीं उसके साथ गीता भी है। उनके जीवनमें एक ओर वंशी है, दूसरी ओर गीता है। आप जानते होंगे, एक बार श्रीकृष्णपर इन्द्र देवता प्रसन्न हुए। यह कथा महाभारतमें है। इन्द्र हैं तो श्रीकृष्णसे छोटे, परन्तु श्रीकृष्णमें मानवता है और इन्द्रमें देवत्व है इसलिए इन्द्रने श्रीकृष्णसे कहा कि वर माँगो। श्रीकृष्णने कहा कि मेरी और अर्जुनकी मैत्री सर्वदा बनी रहे, हमारी मित्रता अटूट-अखण्ड हो। इन्द्रने कहा—'तथास्तु'। इन्द्रके पुत्र हैं अर्जुन। आप एक सम्बन्धपर विचार करें। इन्द्र हाथके अधिष्ठातृ देवता हैं। सब इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ देवता होते हैं। इसको आप ऐसे समझें कि जैसे आँख है। उससे आप सब लोग दीख रहे हैं। परन्तु यदि आँख-का अधिष्ठातृ देवता सूर्य न हो या प्रकारान्तरसे सूर्यका प्रकाश न मिलता हो—चाहे बिजलीमें, चाहें आगमें, चाहे चन्द्रमामें—तो आपको आँख किसी वस्तुको नहीं देख सकती। आँख अध्यात्म इन्द्रिय है। जो रूप दीखता है वह अधिभूत है और सहायक अनुग्राहक सूर्य देवता है। जैसे आँख-का देवता सूर्य है वैसे ही हाथका अनुग्राहक देवता इन्द्र है। इन्द्रका पुत्र है अर्जुन। कर्मके देवताके साथ अर्जुनका सम्बन्ध है। वह यदि कर्म-त्याग कर देगा तो अपने मूलतत्त्वकी ही उपेक्षा कर देगा। इसलिए अर्जुन-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के जीवनमें कर्म होना आवश्यक है।

एक दूसरी बात देखें। ईश्वर अपने लिए करण सुरक्षित नहीं रखता। करण माने औजार। वह बिना किसी दूसरी वस्तुकी मदद लिये ही आनन्द स्वरूप है। जैसे आपके यहाँ घी है। वह गेहूँकी मदद लेकर, चावलकी मदद लेकर या शक्करकी मदद लेकर ही स्वाद दे सकता है। घीको स्वाद देनेके लिए मददगारकी जरूरत पड़ती है। परन्तु ईश्वरको अपना काम करनेके लिए किसी सहायककी आवश्यकता नहीं पड़ती, उसके यहाँ बन्धन नहीं। ईश्वर जब कोई काम करता है तो वह किसीके अन्तःकरणमें ही बैठ जाता है। ईश्वरने अपने लिए रहनेका कोई मकान नहीं बनाया। जितने भी अन्तःकरण हैं, सब ईश्वरके मकान हैं। जितने भी कण हैं वे ईश्वरके आवास हैं। जितने भी क्षण हैं, उनमें ईश्वर चमाचम चमक रहा है। प्रत्येक क्षण ईश्वरका प्रकाश है। प्रत्येक कण ईश्वरका आविर्भाव है। प्रत्येक मन ईश्वरका निवासस्थान है।

हमारे अन्तःकरणमें बुद्धिकी उपाधिसे बैठते हैं भगवान् श्रीकृष्ण—बुद्धिं तु सारथिं विद्धि। हमारे हृदयमें उचित-अनुचितका निर्णय करने लिए श्रीकृष्ण विराजमान होते हैं और उनकी बात सुनने और माननेके लिए हमारा ही मन बैठता है। मनमें जो भगवत्प्रकाश है, चैतन्य है; उसका नाम अर्जुन है और बुद्धिमें जो भगवत्प्रकाश है, चैतन्य है; उसका नाम श्रीकृष्ण है। प्रत्येक हृदयमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका निवास है और वे सबको मार्गदर्शन देते हैं। पर उस मार्गदर्शनको दुर्योधन नहीं सुन पाता, अर्जुन सुन पाता है। अर्जुन सरल है। अर्जुन शब्दका अर्थ नीलकण्ठने, महाभारतके उद्योगपर्वमें ऋजुत्वात् अर्जुनः किया है। अर्जुन ऋजु है, सरल है। जो दावपेचसे बात करता है वह अर्जुन नहीं होगा। व्यवहारमें दावपेच नहीं चाहिए। सरलता चाहिए। सीधे चलो। टेढ़े मत चलो। वामपन्थसे मत चलो, सीधे चलो। किसीको भूलभुलैयामें डालना या स्वयं पड़ जाना आत्माके सहज स्वभावके विपरीत है।

अब मैं आपका ध्यान एक सहज बातपर आकर्षित करता हूँ। एकदम सहज बात है, टेढ़ी नहीं। आपका जीवन दो तत्त्वोंसे बना दीखता है। वे कौन-से दो तत्त्व हैं? कर्म और ज्ञान हैं। आँख ज्ञान है और पाँव कर्म है। आप आँखसे देखते हैं और पाँवसे चलते हैं। इसी तरह ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान हैं और कर्मेन्द्रियाँ कर्म हैं। प्रत्येक मनुष्यका जीवन बिना दाव-पेचके सहजभावसे दो तत्त्वोंका प्रकाश है, अभिव्यक्ति है। आपके शरीरमें दो तत्त्व जाहिर हैं—दो तत्त्वोंका इजहार है। आप समझते हैं और करते हैं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करते हैं और समझते हैं। करते-करते समझ बढ़ जाती है और समझते-समझते उसके अनुसार करने लगते हैं। जीवनमें ज्ञान और कर्मका सङ्गम है। इसको संस्कृतभाषामें समुच्चय बोलते हैं। बिना ज्ञानके कर्म अन्धा है, बिना कर्मके ज्ञान पङ्गु है—लँगड़ा है। सांख्यदर्शनमें एक दृष्टान्त है। इसे अन्ध-पङ्गु-न्याय बोलते हैं। एक था अन्धा। वह जाना चाहता था बदरीनाथ। पर रास्ता कौन बतावे? एक था लँगड़ा। वह भी जाना चाहता था बदरीनाथ, पर चल नहीं सकता था। तब दोनोंने आपसमें मित्रता जोड़ ली। अन्धेके कन्धेपर लँगड़ा बैठ गया। लँगड़ा रास्ता बताता जाये क्योंकि उसके आँख थी और अन्धा चलता जाये क्योंकि उसके पाँव थे। दोनों बदरीनाथ पहुँच गये।

हमारे जीवनमें कर्म अन्धा होता है। एक तो हम बिना सोचे-समझे, चाहे जो कुछ करनेके लिए उद्यत हो जाते हैं। दूसरे, हम सोचते-समझते तो बहुत हैं, परन्तु करते कुछ नहीं। जब इन दोनोंका मेल मिलता है, तब हमारा जीवन ठीक-ठीक चलता है। हमारे जीवनकी गाड़ीके ये दो पहिये हैं। योगवासिष्ठके प्रारम्भमें ही यह प्रश्न आया है। आसमानमें चिड़िया तभी उड़ती है जब उसके दोनों ओर पंख हों। एक पंखसे चिड़िया उड़ नहीं सकती। इसीप्रकार ज्ञान और कर्मके समन्वयसे ही मनुष्यके जीवनका रथ बिल्कुल ठीक चलता है। जिस प्रकार गाड़ीके दो पहिये होने चाहिए, उसीप्रकार आदमीके दो पाँव। एक पाँवसे कैसे चलेंगे? चलनेके लिए दो पाँव होने चाहिए, काम करनेके लिए दो हाथ होने चाहिए, देखनेके लिए दो आँख होनी चाहिए, सुननेके लिए दो कान होने चाहिए। अस्तु जीवनमें दो वस्तु आवश्यक है—एक बुद्धि और दूसरा कर्म।

कभी-कभी दोष कर्ममें भी आ जाता है और बुद्धिमें भी आ जाता है। दोनोंमें समरसता आवश्यक है। बुद्धिसे संगत कर्म करें और कर्मसे संगत बुद्धि रखें। बुद्धि और कर्ममें वैसी ही मित्रता होनी चाहिए, जैसी मित्रता श्रीकृष्ण और अर्जुनमें है। श्रीकृष्ण और बलराममें मदभेद है परन्तु श्रीकृष्ण और अर्जुनमें मतभेद नहीं। महाभारत तथा भागवतमें बलरामजीका जो अन्तिम जीवन है, वह श्रीकृष्णसे किञ्चित् पृथक् हो गया है। परन्तु अर्जुनका जीवन निरन्तर श्रीकृष्णके साथ मिला हुआ है। आप कोई काम करते समय सीधी-सी बात देखिये। उसमें आपकी बुद्धिका विरोध तो नहीं? यदि है तो उसको अनुकूल बनाइये। यह देखिये कि आप जो कुछ सोचते हैं, उसमें कर्तव्यपालनका विरोध तो नहीं? बुद्धि और कर्म दोनोंका एक साथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिलकर काम करना अनिवार्य है, उनमें मतभेद नहीं होना चाहिए। समझ श्रीकृष्णकी और कर्म अर्जुनका। दोनोंके समुच्चय—दोनोंके सामञ्जस्य-से ही सफलता मिलती है। उनमें किञ्चित् भी अटपटापन नहीं होना चाहिए।

अब एक दूसरी बात लेते हैं। अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः। पहले बुद्धिके दोषका निराकरण हो और पीछे कर्मके दोषका-निराकरण हो। बुद्धि भोगकी ओर झुकती है। हम ट्रेनसे चलते हैं तो किस-किस स्टेशनपर पानी,दूध, भोजन मिलेगा, यह सोच लेते हैं। बुद्धिका झुकाव भोगकी ओर होता है, परन्तु कबतक? जबतक भोग न मिले। भोग मिलनेके बाद बुद्धि वहाँसे सिमट जाती है। संस्कृतमें एक न्याय है—वस्तुपक्षपातो हि धियां स्वभावः—बुद्धिका स्वभाव है कि जिस चीजको वह सच समझ लेती है उसे किसीके कोटि यत्न करनेपर भी छोड़ नहीं सकती। वह अपने समझे हुए सत्यका पक्षपात करती है। हम अपने मित्रको चोरीका अभियोग लगनेपर भी अदा-लतसे छुड़ानेका प्रयत्न करते हैं। उसके लिए खर्च करते हैं, श्रम करते हैं, सिफारिश करते हैं। लेकिन सब करनेके बावजूद यदि सजा हो जाती है तो मनमें कहीं-न-कहीं यह बात फुर जाती है कि इन्होंने चोरी तो की ही थी। सत्यका, यथार्थका पक्षपात करना प्रत्येक बुद्धिका स्वभाव है। किन्तु पक्षपात रखते हुए भी बुद्धि वहाँ झुक जाती है, जहाँ तृष्णा होती है। तृष्णा बुद्धिका दोष है और कर्तव्यपथसे विचलित हो जाना कर्मका दोष है। कर्तव्य भी कर्म है और अकर्तव्य भी कर्म है। दोनो हैं। परन्तु कर्ममें अकर्तव्यका समावेश हो जाना कर्मका दोष और बुद्धिमें तृष्णाका समावेश हो जाना बुद्धिका दोष है। इसलिए गीता अनाश्रितः कर्मफलं—इस अर्द्धालीमें बुद्धिके दोषका निवारण करती है और कार्यं कर्म करोति यः में 'कार्यं' पदका प्रयोग करके कर्मके इस दोषका कि उसमें अकर्तव्यका समावेश न हो जाय, निवारण करती है। धृतराष्ट्रने संजयको पांडवोंके पास भेजा और सन्देश दिया कि श्रीकृष्णसे जाकर कहो, वे युद्ध टालने-का प्रयास करें। श्रीकृष्णने कहा कि सत्यको, न्यायको, धर्मको छोड़कर युद्ध न हो, इसके लिए हम प्रयास क्यों करें? सत्य छूट जाय, न्याय छूट जाए, यथार्थ छूट जाय, हित छूट जाय तो शान्ति कैसी? मैं आपको तीन सूत्र सुनाता हूँ। जैनधर्मका सार है अहिंसा, बौद्धधर्मका सार है करुणा; दोनों बड़े अच्छे हैं। किसीको लेशमात्र ताप या तकलीफ दिये बिना हम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने आत्मामें स्थित हो जायँ, यह जैनधर्मका सार अहिंसा है। बौद्ध-धर्मका सार है कि हम केवल लोगोंको दुःख पहुँचानेसे ही नहीं बचें, बल्कि हमारे हृदयमें करुणा उमड़ पड़े और हम दूसरोंको यहाँ तक कि पशु-पक्षियोंको भी दुःखी न देख सकें और उन्हें अपने हृदयसे लगा लें।

इसी प्रसंगमें तीसरी बात देखें हमारे वैदिक धर्मका सार है हित। यदेव हिततमं—यह उपनिषद् बोलती है। किसीका आपरेशन न करना पड़े यह बहुत बढ़िया बात है, इस भावनामें अहिंसा है। रोगीको ऐसी दवा दे दो कि उसे दर्द न मालूम पड़े, आराम मिले, यह करुणा है। किन्तु आपरेशन करनेसे दुःख दूर हो जाय तो आपरेशन करो, मीठा खिलानेसे दुःख दूर हो जाय तो मीठा खिलाओ, कड़वा खिलानेसे दुःख दूर हो तो कड़वा खिलाओ—यह वैदिक धर्म है। सृष्टिके अनादि अनन्त शाश्वत इतिहासमें अनेक बार युद्ध और शान्तिके प्रसङ्ग आते हैं। काल अनादि है और हमेशा चलता रहता है। इसमें भिन्न-भिन्न प्रकारके प्रसङ्ग आते रहते हैं। इसमें सबके हितपर जो दृष्टि है वही वैदिक धर्म है। अहिंसासे सबका भला हो तो ठीक है, करुणासे सबका भला करो। सबकी भलाईके लिए आवश्यकता हो तो हिंसा, आवश्यकता हो तो अहिंसा, आवश्यकता हो तो करुणा और आवश्यकता हो तो कठोरता करो। हित करुणामें भी है और कठोरतामें भी। आप श्रीरामचन्द्रका चरित्र देख लें; श्रीकृष्णका चरित्र देख लें, वे हित-प्रधान हैं। श्रीरामचन्द्रके चरित्रमें आपको करुणा भी मिलेगी, गीधपर कितनी करुणा है उनकी। किन्तु आपको उनके चरित्रमें करुणाके साथ-साथ कठोरता भी मिलेगी। बड़ी भारी कठोरता मिलेगी। श्रीरामचन्द्र स्वजननिष्ठुर हैं। उन्होंने भरतके प्रति, सीताके प्रति, लक्ष्मणके प्रति स्वयं अपने प्रति कुछ कम कठोरता नहीं की। परन्तु उनकी कठोरतामें हितकी दृष्टि है। इसीप्रकार उनकी कोमलतामें भी हितकी दृष्टि है। भवभूतिने कहा—

वज्रादपि कठोराणि
मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि
को नु विज्ञातुमर्हति॥

अर्थात् लोकोत्तर पुरुषका चित्त कठोर भी होता है और मृदु भी होता है, परन्तु उनमें हितका वियोग कभी नहीं होता। उनका मन सदा-सर्वदासे हितसे संयुक्त रहता है। श्रीकृष्णने संजयसे कहा धृतराष्ट्रसे कह देना कि—

कृष्णो धनञ्जयस्यात्मा
कृष्णस्यात्मा धनञ्जयः।

अर्जुनके आत्माका नाम कृष्ण है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और कृष्णके आत्माका नाम अर्जुन है। एक ही आत्माके दो नाम हैं—कृष्ण और अर्जुन, नर और नारायण! सत्यमेकं द्विधा स्थितम्। तो, दोष जो आजाते हैं उनको पहचाननेके लिए बुद्धिकी आवश्यकता होती है। मैं वार-वार कहता हूँ कि दुनियाके सारे मजहव श्रद्धाप्रधान हैं और गीताधर्म बुद्धिप्रधान है। ज्ञानका तात्पर्य केवल आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान, अद्वैतज्ञानसे ही नहीं है। उस लौकिक बुद्धिसे भी है जो परमार्थको साथ लेकर चलती है। वह चलती है लोकमें, किन्तु परमार्थको छोड़कर नहीं, साथ लेकर चलती है। पहले वताया गया कि वुद्धिका दोष है तृष्णा। तृष्णाका मूल है काम-लोभ काम लोभका भूल है संकल्प। इनकी भी वंश-परम्परा होती है और उनका वर्णन वैसे ही होता है जैसे भाटलोग हमारी पूर्व-पीढ़ीका वर्णन करते हैं। एक वार यह जाननेकी आवश्यकता पड़ी कि हमारे पूर्वज हिमालयका कछार छोड़कर कितने पहले काशीनरेशके पास आये थे। तो भाटोंकी विरुदावली देखी गई और पता चला कि हमारे पूर्वज हमसे पन्द्रह पीढ़ी पहले काशीनरेशके पास आये थे। तो, देखो, हमारे मनमें हिंसा आती है; हमारे मनमें तृष्णा आती है। हिंसा क्रियामें होती है, क्रोध मनमें होता है और द्वेष संस्कारमें रहता है। हिंसाकी अपेक्षा क्रोध अन्तरङ्ग है और क्रोधकी अपेक्षा द्वेष अन्तरङ्ग है। क्रोध जलता है और द्वेष सुलगता है। हिंसा दूसरेको जलाती है। यदि आप हिंसा रोकना चाहते हों तो वह केवल पुलिस और कानूनसे नहीं रुकेगी। तव रुकेगी जव लोगोंके मनमें क्रोध कम होगा। इसी तरह चोरी-वेइमानी कव रुकेगी? चोरी-वेइमानी क्रिया है। यह भी पुलिससे, कानूनसे नहीं रुकेगी। तभी रुकेगी जव लोगोंके मनमें लोभ कम होगा। ऐसी ही वात अनाचार-व्यभिचारके सम्बन्धमें है। अनाचार-व्यभिचार क्रिया है। उसे फौज नहीं रोक सकती। फौज भी अनाचारी-व्यभिचारी हो जाती है। पुलिस भी हो जाती है। सरकार भी हो जाती है। डाकू लोगभी अपना झुण्ड वना लेते हैं। व्यभिचारी लोग भी अपना चकला चलाते हैं। एक जुट वना लेते हैं। लोभी लोगोंका भी गुट होता है। लोभियोंका गुट, कामियोंका गुट, क्रोधियोंका गुट वन जाता है।

हमारे आयुर्वेदके अनुसार जो चिकित्सा होती है उसमें एक होती है व्याधिप्रत्यनीक चिकित्सा और दूसरी होती है हेतुप्रत्यनीक चिकित्सा। जैसे किसीको जल्दी सर्दी हो जाती है। उसे एक दवा खिला दी, इंजेक्शन दे दिया, सेंक कर दिया और सर्दी मिट गयी तो यह व्याधिप्रत्यनीक चिकित्सा हुई। हेतुप्रत्यनीक चिकित्सा वह होती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं, जो हमेशाके लिए दोषको मिटाने-का प्रयास करे। अपना अध्यात्मशास्त्र भी चिकित्साशास्त्र है। इसके भी चिकित्साके समान ही चार भेद होते हैं। यदि आप हिंसा मिटाना चाहते हैं तो क्रोध कम कीजिये। क्रोध कम करना चाहते हैं तो किसी व्यक्तिसे, जातिसे; सम्प्रदाय अथवा राष्ट्रसे द्वेष मत कीजिये।

अब आगे आपको बताते हैं कि किसी कर्मसे भी द्वेष मत कीजिये। नहीं तो वह कर्म जिसके अन्दर दीखेगा उसीसे आपको द्वेष हो जायेगा। गीतामें है—

'न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म
कुशले नानुसज्जते।'

तात्पर्य यह कि किसी भोगसे द्वेष मत कीजिये। किसी वस्तुसे द्वेष मत कीजिये। किसी चीजको देखकर आपके हृदयमें आग न जले। हमारे कर्ममें जो चोरी-बेइमानी होती है वह क्यों होती है? लोभकी अधिकतासे होती है। कामकी पूर्ति और दूसरी अपूर्ति। कामनाकी पूर्ति होनेपर लोभ होता है और अपूर्ति होनेपर क्षोभ होता है—कामात् क्रोधोऽभिजायते। कामके दो बेटे हैं—लोभ और क्रोध। पूरा हुआ तो लोभ और पूरा न हुआ तो क्रोध। भगवान् कहते हैं कि यदि तुम फल पर ही दृष्टि रखोगे तो परा-धीन हो जाओगे। फल पराधीन है, कर्म स्वाधीन है। जो तुम कर सकते हो वह करो। कोई बीमार है। वह मरे नहीं, यह आपके हाथमें नहीं है। परन्तु अपनी शक्तिके अनुसार उसकी सेवा आपके हाथमें है। यदि आप यह चाहते हैं कि वह कभी नहीं मरे तो शास्त्रके विपरीत इच्छा करते हैं। वह एक-न-एक दिन मरेगा और आपको दुःखी होना पड़ेगा। तो कर्म कीजिये। कर्म करना, कर्तव्यपालन करना आपका धर्म है; परन्तु उसका फल समाजके हाथमें छोड़िए।

प्रसङ्गवश एक बातको सुना देता हूँ। जो वर्तमान 'हिन्दू' शब्द है, यह किसी जातिका वाचक नहीं। 'हिन्दू' जाति नहीं होती, जाति तो मनुष्य होती है। 'आकृतिग्रहणाज्जातिः' है। जिसको देखते ही मालूम पड़ जाता है कि मनुष्य मनुष्य है। आपको देखकर कौन बता सकता है कि आप किस जातिके हैं? किन्तु मनुष्य जातिसे सब परिचित हैं। हिन्दू शब्द किसी विशेष सम्प्रदायका भी वाचक नहीं, न शाङ्कर सम्प्रदायका, न रामानुज सम्प्रदायका और न किसी अन्य सम्प्रदायका। जो किसी एक आचार्यके द्वारा प्रवृत्त होता है, उसका नाम सम्प्रदाय होता है। जैसे मोहम्मदीय सम्प्रदाय है, बौद्ध सम्प्र-दाय है, जैन सम्प्रदाय है। अब आप बतलाइये कि हिन्दुत्वका प्रचलन किसने किया? इसपर बड़े-बड़े शास्त्रार्थ हो चुके हैं। सर्वसाधारणको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मालूम नहीं। जब श्री विरलाजीने अपनी संस्थाका नाम 'आर्यधर्म-सेवा संघ' रखा, तब काशीमें यह विचार हुआ कि हिन्दूधर्म सेवासंघ नाम रखा जाय। जब काशीमें पण्डितोंने 'वर्णाश्रम-संघ'की स्थापना की तो इसपर विचार हुआ कि वर्णाश्रम संघ नहीं, 'हिन्दूसंघ' नाम रखा जाय। करपात्रीजीने मेरे सामने ही धर्म-संघ बनाया। विद्वानोंने बहुत विचार किया कि हिन्दूधर्म नाम क्यों न रखा जाय। किन्तु कोई शास्त्रीय आधार नहीं मिला। तो हिन्दू न जाति है, न सम्प्रदाय। यदि चोटीवालेका नाम हिन्दू, तो विना चोटी संन्यासी लोग भी तो हिन्दू होते हैं, तो क्या जनेऊवाला हिन्दू है? नहीं, नहीं, बिना जनेऊके भी हिन्दू होते हैं। उसका लक्षणार्थ यही है कि एक समाज भिन्न-भिन्न आचार, भिन्न-भिन्न धर्म, भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय और भिन्न-भिन्न प्रकारसे रहनेवाले समुदायका नाम हिन्दू है। इसके अतिरिक्त यह न जाति है, न सम्प्रदाय, न वर्ग है और न लिङ्ग ही है।

अच्छा आपको यदि हित करना हो तो चाहते हैं कि आप पराधीन न हों, काम करके मूर्ख न बनें, दुःखी न हों। हम सीधी-सीधी बात कर रहे हैं। पराधीन होना दुःखी होना है। पराधीन होना मूर्ख होना है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—बाबा, तुम कर्मके आश्रय हो, कर्मके कर्ता हो। बुद्धिसे कर्म तो तुम करो, लेकिन तुमको फलके अधीन न होना पड़े, इसका ध्यान रखो। चोरी बेइमानी अकार्य है। हिंसा अकार्य है। व्यभिचार-अनाचार अकार्य है। यह अकार्य तुम मत करो, लेकिन कार्य करो। यह पहली भूमिका है कि तुम्हारे कर्ममें कर्तव्यका समावेश हो। दूसरी बात यह है कि आप कर्म करके बन्धनमें न पड़ें। कर्ममें पाँच दोष हैं और उनके निवारणके लिए गीतामें चार विद्याओंका उपदेश है। विद्या अविद्याको तो निवृत्त करेगी ही। विद्यामात्र ही अविद्याकी निवृत्तिमें उपयोगी है। आपके कर्ममें नासमझी एक दोष है। आप बिना समझे-बूझे कर्ममें लग जाते हैं। ऐसे बिलमें हाथ डाल देते हैं, जहाँसे खींच न सकें। हम लोग बचपनमें गाँवके खेल खेला करते थे। एक यह था कि छोटे मुँहवाले मिट्टीके बर्तनमें कुछ खाना रखकर, थोड़ी दूर बैठ जाते। कुत्ता आता देखता कि खानेकी चीज रखी है तो उसमें अपना मुँह डाल देता और सिर फँस जाता। वह भोजन तो कर लेता लेकिन जब उस बर्तनसे सिर निकालने लगता तो निकलता ही नहीं। तो ऐसे कर्ममें अपनेको नहीं फँसाना जहाँसे निकल नहीं सकते। ऐसा करना तो कुंएमें गिरना है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नासमझी है। ठीक वैसे ही जैसे मदारी छोटे मुँहके वर्तनमें चने रखकर मिट्टीमें गाड़ देते हैं। बन्दर आता है और उसमें हाथ डाल देता है। मुट्ठीमें चना भर लेता है। जब उसकी मुट्ठी खाली थी तब तो वर्तनमें चली गयी और जब उसमें चना भर लिया तो वह वर्तनमें-से निकलता नहीं। इतनेमें मदारी बन्दरको पकड़ लेता है और उसे मदारीके पराधीन होना पड़ता है। तो, ऐसे कर्ममें हाथ नहीं डालना, जिसके आप आश्रित हो जायँ। कर्म आपके आश्रित रहें। आप जब चाहें, दोनों हाथ उठाकर खड़े हो जायँ और कर्म छोड़ दें। यह कैसे होगा? कर्म सम्बन्धी दोषोंका निवारण होने पर। कर्म करनेमें एक तो नासमझी दोष है। इसको शास्त्रकी भाषामें अविद्या बोलते हैं। दूसरा दोष है कर्मका अभिमान। हम यह करेंगे, वह करेंगे। यक्षे दास्ये मोदिस्य इत्यज्ञान-विमोहिताः—हम अज्ञानसे विमोहित होकर ही अभिमान करते हैं।

•

एक वैभवसम्पन्न मुसलमान जमींदार था। कालकी प्रेरणासे वह गरीब हो गया। गरीबोंमें वह फकीर हो गया। वह रात्रिके समय नियमपूर्वक भीख माँगनेके लिए बस्तीमें जाता था। एक दिन वह अँधेरेमें गिर गया। दूसरे दिनसे उसने एक नौकर रख लिया। नौकरका काम था—फकीरके सामने दीपक दिखाना। फकीर होनेपर भी उसके अमीरीके संस्कार नहीं गये थे। इसीप्रकार यह आत्मा अनादिकालसे महान् ऐश्वर्यका भोक्ता रहा है। यही कारण है, जबतक यह इस महान् ऐश्वर्य (भगवत्व) की प्राप्ति नहीं कर लेता तब-तक असन्तोषी बना रहेगा। असन्तोषकी निवृत्ति जगत्की किसी भी वस्तुसे होनी सम्भव नहीं है।

—श्री उड़िया बाबाजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिलके दौरे

डॉ० लक्ष्मी नारायण शर्मा

कैंन्सरकी विभीषिकाके समान ही दिलके दौरेकी वृद्धिने भी आज मानवके स्वास्थ्यको एक चुनौती दे रखी है और आज संसारका चिकित्सक वर्ग इस चुनौतीका सामना करनेके लिए प्राण-पणसे जुटा हुआ है।

दिलका दौरा क्यों पड़ता है

सामान्य लोग दिलके दौरोंके बारेमें प्रायः बहुत कम जानकारी रखते हैं। वस्तुतः दिलका दौरा एक गम्भीर रोग जरूर होता है। लेकिन लगभग ८५ फीसदी रोगियोंमें यह घातक नहीं होता। पहला दौरा पड़नेके बाद यदि रोगीकी उचित चिकित्सा होती है तथा परहेज और सावधानी बरती जाती है तो प्रायः रोगी अपनी पूर्ण आयु जी लेता है। रोगी जितनी कम आयुका होता है वह उतनी ही जल्दी अच्छा होता है और अपेक्षाकृत अधिक वर्षोंतक जीता है।

हमारे शरीरका प्रत्येक अङ्ग और अवयव खूनके आधारपर जीवित रहता है और अपने कामको अंजाम देता है। शरीरमें प्रत्येक कोष्ठको खून पहुँचानेका काम हमारा दिल करता है। दिल खूनको झटकोंके साथ रक्त-वाहिनियोंमें धकेलता है। सामान्य रूपसे प्रतिदिन हमारा दिल चार हजार गैलन खून पम्प करता है। लेकिन दिल अपना काम सुचारु रूपसे करता रहे इसके लिए उसकी पेशियोंको भी खूनकी आवश्यकता होती है। दिलको खून पहुँचानेका काम 'कारनरी' नामक धमनी करती है। यों दिलके रोगोंके अनेक रूप होते हैं परन्तु मुख्य रूपसे 'कारनरी' धमनीकी खराबी अधिकांश दिलके दौरोंके लिए जिम्मेदार होती है। कई बार इस धमनीका लचकीलापन कम हो जाता है। कभी-कभी इसके रक्तप्रवाहमें कोई अटकाव आ जाता है अथवा मुख्य धमनीका मुँह छोटा हो जानेके कारण भी कारनरी धमनीमें रक्त प्रवाह कम हो जाता है। कुल मिलाकर जब कारनरी धमनीद्वारा दिलमें जरूरतसे कम रक्त पहुँचता है या किसी भी रूपमें दिलको खूनकी सप्लाईमें बाधा पड़ती है तभी व्यक्तिको दिलका दौरा पड़ता है।

बायीं पसलीके क्षेत्रमें (दिलके स्थानपर) दर्द होना, पसीने आना, सांस फूलना, बेचैनी आदि दिलके दौरेके सामान्य लक्षण होते हैं।

कारण

यों हृदय रोगोंके अनेक कारण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होते हैं, लेकिन मांसाहार और धूम्र-पान दो बड़े कारणोंमें-से है। वस्तुतः मांस भोजनमें 'कोलेस्ट्रोल' नामक एक चर्बी तत्त्व होता है, जो रक्त-वाहिनी नलिकाओंका लचकीलापन बहुत घटा देता है। अनेक रोगियोंमें यह तत्त्व ऊँचे रक्तचापके लिए भी उत्तरदायी होता है। मांसके अतिरिक्त कोलेस्ट्रोल अण्डों और दूधमें भी होता है। लेकिन दूधमें अपेक्षाकृत काफी कम होता है। मक्खन निकला दूध (सेपरेटा) एवं छाछमें कोलेस्ट्रोलका खतरा नहीं रहता क्योंकि इनसे चर्बी तत्त्व (मक्खन) अलग कर दिया जाता है।

मांसाहारके साथ भी यह परीक्षण करके देखा गया कि मांसको चर्बी-रहित करके खाया जाय ताकि कोलेस्ट्रोलकी बाधा न उत्पन्न हो, परन्तु यूरिक एसिड अधिक होनेके कारण मांसाहार इस दोषसे मुक्त नहीं हो पा रहा है। मांसके साथ शरीरमें पहुँचनेवाला यूरिक एसिड दरअसल मनुष्य शरीरके लिए एक विजातीय द्रव्य ही होता है। यह जोड़ोंमें पहुँचकर जमा हो जाता है और वहाँ दर्द और सूजन पैदा कर देता है। घुटनोंके जोड़ इस विकारके जल्दी शिकार हो जाते हैं। इस विकारको रियूमेटिज्म कहा जाता है। यूरिक एसिडका यह कुप्रभाव सिर्फ जोड़ों तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि शीघ्र ही दिलपर आक्रमण करता है और व्यक्ति रियूमेटिक हार्टका शिकार हो जाता है। रियूमेटिक हार्ट दिलके लिए दौरोंसे बदतर और गम्भीर स्थिति होती है। वस्तुतः मांसमें उत्तम प्रोटीन्सके साथ यूरिक एसिडके रूपमें काफी जहर भी खाना पड़ता है।

'वर्ल्ड हैल्थ आर्गनाइजेशन'की एक विशेष समितिने सर्वेक्षण द्वारा यह निष्कर्ष निकाला है कि २२ विक-सित और समृद्ध देशोंमें जहाँ कि मुख्य रूपसे मांसाहार किया जाता है। प्रति १००.००० व्यक्तियोंमें ४०० से अधिक लोग हृदय रोगसे मरते हैं। यह संख्या फिनलैण्डमें सबसे अधिक अर्थात् ४४२ है, जबकि एशियाई देशोंमें अपेक्षाकृत बहुत कम है। जापान-में १००,००० व्यक्तियोंमें सिर्फ ५१ लोग हृदय रोगोंसे मरते हैं। सौभाग्य-से यह संख्या भारतमें अभी ४२ से अधिक नहीं पहुँचती है और निश्चय ही इसका श्रेय भारतकी शाकाहार पद्धतिको है।

इन कारणोंके अतिरिक्त सर्वेक्षणों-से यह तथ्य भी प्रकाशमें आया है कि जिन विकसित और समृद्ध देशोंमें जितनी अधिक मोटरकारें हैं और वहाँ के लोग जितनी अधिक सिगरेट पीते हैं दिलके दौरोंके केस वहाँ उतने ही अधिक हैं। दो वर्ष पूर्व नयी दिल्लीमें जो हृदय विशेषज्ञ डाक्टरोंकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कान्फ्रेन्स हुई थी तब अमेरिकाके प्रमुख हृदय विशेषज्ञ राबर्ट जोन्सनने शामको आफिससे घर लौटनेवाले साइकिल सवार बाबुओंकी भारी भीड़ जब सड़कोंसे गुजरती देखी तो थोड़े आश्चर्यके साथ संतोष व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा—'दिलके दौरोंकी विभीषिकासे शायद भारत अभी काफी समय तक मुक्त रहेगा। ये साइकिलपर चलनेवाले लोग आठ-दस मीलका सफर करके बहरहाल कुछ शारीरिक श्रम तो करते हैं लेकिन अमीर मुल्कोंके लोग कारोंमें बैठकर दौड़ते हैं और खूब मांस चर्वी युक्त भोजन खाते हैं। शारीरिक श्रम नाममात्रको भी नहीं करते। इसलिए दिलके रोगोंके चंगुलमें फँसते चले जा रहे हैं।'

धूम्रपान

धूम्रपान द्वारा अलबत्ता शरीरमें 'कोलेस्ट्रोल' तो नहीं पहुँचता, लेकिन तम्बाकूका 'निकोटीन' रक्तमें गर्मी और खुश्की पैदा करके उसे गाढा और जहरीला बनाता है। फलतः गाढ़ा खून पूरे तौरपर िलको रक्त सप्लाई नहीं कर पाता। साथ ही दिलकी पेशियोंमें भी जहरीले तत्त्व भर देता है। 'निकोटीन' दिलमें जो विशिष्ट विकार पैदा करता है, वे अपने ढंगके अलग होते हैं। तब दिलको 'टुबेकोहार्ट'की संज्ञा दी जाती है। 'टुबेकोहार्ट'का मुख्य लक्षण होता है मामूली शारीरिक परिश्रमसे साँस फूल जाना।

दिलपर शाकाहार का प्रभाव

दिलकी पेशियों तथा कारनरी धमनी द्वारा रक्त संचारको सही रखनेमें भोजनका बड़ा हाथ होता है। शाकाहार विशेष रूपसे फल और हरी कच्ची सब्जियाँ हृदयके लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध होती हैं। सब्जियाँ और फलोंके खनिज लवण रक्तमें खटाईका माद्दा नहीं बढ़ने देते साथ ही खूनमें जलके संतुलनको सही रखते हैं। फलों और सब्जियोंसे मिलनेवाला कैलशियम लवण शरीरकी सभी धमनियोंके लचकीलेपनकी रक्षा करता है। फलतः दिलके दौरेमें ही नहीं ऊँचे रक्तचापसे भी व्यक्तिकी रक्षा करता है। साथ ही कैलशियम हृदयकी पेशियोंकी क्रियाशीलताके लिए जरूरी होता है। कुछ फल विशेष और सब्जियाँ तो दिलको खासतौरपर शक्ति पहुँचाती हैं। जैसे अनन्नास, आँवला, अमरूद, अनार, सेव, गाजर और सन्तरा। हृदय विशेषज्ञोंका मत है कि जिन रोगियोंको एकाध बार दिलका दौरा पड़ चुका है। उन्हें खासतौरपर मौसमके फल और हरी कच्ची सब्जियाँ अपने भोजनमें अवश्य शामिल करनी चाहिए और मांसाहार छोड़ देना चाहिए।

इन उपायोंसे भविष्यमें दिलके दौरोंमें भारी सुरक्षा मिलती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिलके दौरोंके सूचक कुछ लक्षण

यदि कोई व्यक्ति अपने अन्दर निम्नलिखित लक्षण महसूस करता है तो उसे सवधान होकर डाक्टरसे अपने दिलकी परीक्षा करनी चाहिए।

१. मामूली परिश्रमसे सांस फूलना।

२. छातीके बायीं ओर खिंचाव अथवा दर्द अनुभव होना जो बायें बाजूमें फैल जाये।

३. उदर अथवा पैरोंके टखनोंपर सूजन।

४. सिरमें चक्कर आना और सिर खाली महसूस होना।

५. एक चीजका दो दिखाई देना (खतरनाक लक्षण)

६. लगतार सिरमें दर्द रहना।

७. विना किसी स्पष्ट कारणके थकावट और कमजोरी बढ़ना।

•

प्रिय,

सप्रेम शुभाशीर्वाद !

तुम्हारा पत्र समयसे मिल गया था। आजकल मेरा स्वास्थ्य डावाँडोल रहता है। उत्तर देनेमें विलम्ब हुआ। कोई ठीक-ठीक व्यवस्था नहीं बन पाती है।

हमारा विचार पन्द्रह अगस्तको यहाँसे वृन्दावनके लिए प्रस्थान करनेका है। वहाँ बीस-पच्चीस दिन रहना है। तुम लोगोंको वहाँ आना हो तो सूचित कर देना। फूलबाई और हथुआकी महरानी आनेवाली हैं। सम्भव है, वहाँ आनेसे तुम्हारी समस्याका कोई समाधान निकल आये।

भागवतमें बहुत उदारता और त्याग करनेको भी मना किया है। वह उदारता अच्छी नहीं होती जिससे अपनी जीविका ही सङ्कटग्रस्त हो जाय। भारतीय संस्कृति अथवा हिन्दू धर्मके अनुसार पतिपर पत्नीका पूर्ण अधिकार होता है। ऐसी उदारता किस कामकी जिसमें अपने स्वत्व और सर्वस्वका ही त्याग होता हो। परिवारकी जीविकाके लिए तुम्हें अपने धर्मसम्बन्धका त्याग नहीं करना चाहिए। वे जाने उनका परिवार जाने। तुम अपनी ओरसे अपने सम्बन्धको निभाओ। उनकी कृति अनुचित है, तुम्हें उचितका परित्याग नहीं करना चाहिए।

शेष मंगल !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन अमृत है

[पूज्य श्रीमहाराजजीके आशीर्वचनका सारांश]

मनुष्यका जीवन उत्साह, आशा और दृढ़ता इन तीनोंसे आगे बढ़ता है। मनुष्य देखनेमें लोगोंको बड़ी उम्रका लगता है। पर भीतरसे तो वह आत्माके रूपमें अजर-अमर है, शाश्वत है परन्तु जीवके रूपमें वह कभी बड़ी उम्रका नहीं होता। हमेशा उसका मन नया-नया होता है और ऊसकी जवानी बनी रहती है। मनुष्यके जीवनमें उसके मनकी जवानी है। उसको कर्मकी प्रेरणा देती है।

जब किसीकी वर्षगाँठ मनाते हैं तो बच्चे लोग यह सोचते हैं कि जैसे हमलोग अपनी वर्षगाँठ मनाकर खुश होते हैं वैसे ये भी वर्षगाँठ मनाकर खुश हों। मनुष्यके जीवनमें ईश्वरका दिया हुआ जितना है उसपर यदि वह ध्यान दे तो उसका मन हमेशा हर्षसे उत्फुल्ल, खुश रह सकता है। होता यह है कि मनुष्य यह तो गिनने लगता है कि हमारे पास किस-किस चीजकी कमी है परन्तु वह यह नहीं गिनता कि हमको भगवान्ने क्या-क्या दिया है।

महात्मा तुलसीदासजीने गाया है 'दियो सुकुल जनम, शरीर सुन्दर, देत जो फल चारिको। अच्छे वंशमें जन्म हुआ, शरीर सुन्दर मिला, इसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थं प्राप्त किये जा सकते हैं और इसमें ईश्वरकी आराधना हो सकती है। इसमें निरन्तर सबको प्रेम दिया जा सकता है।

प्रेम ले-लेकर नहीं दिया जाता, जो भी अपने सामने आया उसको प्रेम दिया जाता है। जैसे सूर्यका स्वभाव रोशनी देनेका है। जैसे चन्द्रमाका स्वभाव चाँदनी देनेका है, जैसे जलका स्वभाव तृप्ति देनेका है इसीप्रकार मनुष्यके आत्माका स्वभाव सबको प्रेम देनेका है। जिससे मनुष्यके जीवनकी सुख सुविधा बढ़े ऐसी स्थितिसे गुजरनेका है। यह तो बाहरकी जो चीजें आ जाती हैं वे मनुष्यको इससे विमुखकर देती हैं। सहज स्वभावसे इसमें अमृत ही झरता रहता है जैसे गंगाजीमें लहर गंगाजल ही है, इसीप्रकार मनुष्य जीवनमें जो नित्य शुद्ध बुद्ध सच्चिदानन्द घन आत्मा भीतर बैठा हुआ है यह वाणी उसकी लहर है। आँख, हाथ, कान, उसकी लहर हैं। यह सम्पूर्ण जीवन सच्चिदानन्दका ही विलास और विकास है।

इसलिए मनुष्यको इस बातपर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्यान रखकर अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए, कि हमें सबसे ऐसा ही व्यवहार करना है जिससे सबके जीवनमें सुविधा प्राप्त हो, बढ़े। सबकी समझदारी बढ़े, ज्ञान बढ़े, सबका आनन्द बढ़े, सबका हित हो, इसीके लिए यह मनुष्य जीवन है। अपने स्वभावमें जो बाहरसे आगन्तुक चीजें आगयी हैं उनसे सावधान रहकर, निरन्तर अपने स्वभावकी वर्षा करता रहे। जैसे कुएँमें-से जितना जल निकलता है उतना ही नीचेसे और जल आ जाता है इसीप्रकार मनुष्य जितनी उदारता-की—प्रसन्नताका-वरण करता है उतना ही उसके जीवनमें और-और वृद्धि होती जाती है।

हम जो वर्षगांठ मनाते हैं, वह अगले क्षणको और भी उत्साह पूर्ण बनानेके लिए है। यदि इसमें पीछे देखनेकी कोई वस्तु है तो उसे याद करें, उसका निरीक्षण करें तो वह उतना ही है जितना एक सिंह अपने रास्तेमें चलते-चलते घूमकर पीछेकी ओर थोड़ी देर देख लेता है कि हमारे पीछे कौन है? कितना रास्ता पार करके आ गये! हम कहाँ खड़े हैं? केवल सिंहावलोकन मात्र ही पीछेकी ओर देखनेका है। अपना रास्ता आगे तय करनेका है और आगे चलनेमें भी एक बात बहुत ध्यान रखनेकी है।

हम एक बार किसी पहाड़की यात्रा कर रहे थे। मोटर चल रही थी। उसमें दाहिनी तरफ बहुत नीचा खड्ड था। उसके किनारेसे मोटर चल रही थी। जब हम नीचे खड्डकी ओर देखने लगे तो हमारे जानकार साथीने कहा कि तुम मोटरके सामने सड़ककी तरफ देखो। यह थोड़ी-थोड़ी करके ऊँचाईको तय करती जा रही है और यदि खड्डकी ओर देखोगे तो भय आने लगेगी। इसलिए खड्डकी ओर देखकर पहाड़की यात्रा नहीं की जाती। अपने सामनेकी जो भूमि है उसको देखकर यात्रा की जाती है। उसकी अत्यधिक दूरी तय करनी है—ऊँचाई पार करनी है यह नहीं देखना चाहिए बल्कि अपने आस-पासकी जो भूमि है उसीको देखते हुए आगे बढ़ना चाहिए।

जीवनमें वर्षगाँठ जो आती है वह आगेके लिए हमें एक योजना देती है और पीछेसे हमारे साथ क्या आया है, कितना है इसका निरीक्षण करने-का अवसर देती है। वैसे ही जैसे घड़ीमें क्षण-क्षण सूई आगे बढ़ती चलती है वैसे दुनियाँ भी क्षण-क्षण आगे बढ़ती चलती है। और हम एक नयी जगहमें अपनेको पाते हैं।

तो नयी-नयी जगह नया-नया समय और नयी-नयी वस्तुएँ हमको मिलती चलती हैं और इस परिवर्तन-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में अपने आपको कहीं उलझाना नहीं चाहिए। बस जो परिवर्तन आता है उसका स्वागत-सत्कार करना चाहिए और उसके रूपमें परमात्माका अनुभव करना चाहिए।

यह जो वैशाखका शुक्ल पक्ष है इसमें अक्षय तृतीयाको तो ब्रह्माका, मनुका, परशुरामका जन्म दिन मानते हैं और बड़े-बड़े सत्पुरुष इसमें पैदा हुए हैं। पंचमीके दिन शंकराचार्य और रामानुजाचार्य दोनोंकी जन्म-तिथि मानते हैं और सप्तमीको वृन्दा-सप्तमी मनाते हैं और नवमी श्रीजानकी-नवमी है और पूर्णिमा बुद्ध पूर्णिमा है, यह सबका सब एक ही पक्ष है, जिसमें ब्रह्मा, मनु, परशु-राम, शंकर, रामानुज, वृन्दा, जानकी, बुद्ध भिन्न-भिन्न मत रखने-वालोंका जन्म हुआ है, परन्तु वे सब एक ही पक्षमें हैं एक ही दिशामें चलते हैं।

इसप्रकार जब हमारा जीवन इतने उत्तम पक्षके साथ सम्बन्ध रखनेवाला है तो वह आगे उत्तम-उत्तम कार्य करे और अपना प्रेम अपना वात्सल्य अपना स्नेह सबके ऊपर बरसाता हुआ ही चले, आँखमें-से प्रेम बरसे, होठोंमें-से प्रेम बरसे, हाथोंमें-से प्रेम बरसे, पाँवोंके चलनेमें भी प्रेम बरसे, यह समग्र आनन्द जीवनमें, जो प्रेमका उत्स है, जो प्रेमका उद्गम है, जो प्रेमकी धारा है। उसको प्रकट करके, सारी दुनियाँमें बरसनेमें ही यह जीवन लगा रहे। संस्कृत भाषामें जीवनका अर्थ होता है अमृत, जीवनका अर्थ होता है जल। इससे सबके ऊपर अमृतकी वर्षा हो, यही जीवन बितानेकी सर्वोत्तम प्रणाली है।

साठ बरसकी उम्रमें तो कहते हैं कि जवानी पुनः आ जाती है गाँवमें बोलते हैं 'साठा सो पाठा' साठ बरसका हुआ तो पट्ठा हो गया, माने फिरसे जवान हो गया, इसलिए नये सिरेसे अपने जीवनका प्रारम्भ करके और खूब-खूब आनन्द, जितना आनन्द है उससे अधिक बढ़े, जितना ज्ञान है उससे अधिक बढ़े, जीवनसे जितना लोगोंको लाभ होता है उससे अधिक लाभ हो। ईश्वरने हमको क्या-क्या दिया है उसकी एक सूची अपने सामने रखना चाहिए और ईश्वरकी प्रसन्नता तथा अनुग्रह प्राप्त हो उसका प्रयास करना चाहिए। •

*** मन, वाणी और शरीर तीनोंकी एकता होनेपर ही संकल्प-सिद्धि होती है। मनमें जिसका संकल्प हो वही बात वाणीसे कही जाय और वही कर्म शरीरसे किया जाय तो वह संकल्प किसीप्रकार असफल नहीं हो सकता। अन्त तक दृढ़ बना रहता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानसिक प्रवृत्तियाँ और हमारा स्वास्थ्य

श्री रामकुमार भुवालका

(भूतपूर्व संसद सदस्य : कलकत्ता)

महान् विचारक स्वामी भास्करानन्दने कहा है कि हमारे मन एवं शरीरका पारस्परिक सम्बन्ध वैसा ही है जैसा अश्व एवं उसके द्वारा खींचे जानेवाले रथका। जिस प्रकार अश्वकी विभिन्न गतियों एवं चालोंका प्रभाव रथके विभिन्न अंगोंपर पड़ता है, उसी प्रकार मनकी गतियोंका शरीरपर। पाश्चात्य प्राकृतिक चिकित्सक जेम्स हाक ने भी प्रकारान्तरसे इसी तथ्यका समर्थन करते हुए मनको मोटरका इञ्जन एवं शरीरको बोडी माना है। स्वस्थ शब्द, अर्थ का अपनेमें स्थित रहना है।

मन एवं शरीरका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि जिस प्रकार अनेक शारीरिक व्याधियाँ मन एवं मस्तिष्कको प्रभावित करती हैं उसी प्रकार मनकी विकृतियाँ शरीरको प्रभावित करती हैं। उदाहरणके लिए यदि शरीरके किसी अंग विशेषकर सिरमें यदि पीड़ा होती है तो मन-मिजाज चिड़चिड़ा हो जाता है। यही नहीं हम दैनिक जीवनमें नित्य देखते हैं कि भयसे शरीर काँपने लगता है, चेहरा पीला पड़ जाता है, हर्षके क्षणोंमें दिलकी धड़कनें बढ़ जाती हैं और उत्तेजनामें रोमाञ्च हो जाता है। छोटे बालक तो अक्सर अत्यधिक भयसे पेशाब भी कर देते हैं। किसीके साथ यदि अत्यधिक वाद-विवाद हो जाता है तो क्रोधके साथ-साथ बेहोश भी हो जाते हैं और लिखते समय अक्षर विकृत भी हो जाते हैं।

मिलनेवाले बन्धु जब मुझसे पूछते हैं कि आपका स्वास्थ्य कैसा है? मेरा उत्तर बराबर यही रहता है 'आप स्वास्थ्यकी बात न पूछकर मनकी बात पूछिये कि मन ठीक रहता है?' प्राकृतिक एवं होम्योपैथिक चिकित्सा पद्धतिमें भी रोगकी चिकित्सा पद्धतिमें भी पहले रोगीकी मानसिक स्थितिकी जाँच कर ली जाती है और समस्त मनःस्थिति जान लेनेपर ही चिकित्सा की जाती है। लेकिन आजकी बहु प्रचलित चिकित्सा प्रणाली एलोपैथी में डाक्टर केवल अपनी बुद्धिके बलपर हृदय, पीठ, आँख, जीभ आदिकी जाँच

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करके निर्णय करते हैं और रक्त, थूक, मल एवं मूत्रकी परीक्षाके बाद रिपोर्ट मिलनेपर नुस्खे लिख देते हैं। यदि लिखी हुई दवाओंमें बाजारमें कोई सुलभ न हुई तो दूसरी दवा लिख दी जाती है। दवाका रोगीपर असर हो या नहीं, इसकी जिम्मेदारी डाक्टर पर नहीं है।

गोस्वामी तुलसीदासने 'रामचरित मानसके उत्तरकाण्डमें मानसिक रोगों एवं शारीरिक व्याधियोंका अत्यन्त सूक्ष्म एवं पूर्ण वैज्ञानिक ढंगसे वर्णन किया है। अभी हाल ही में मैंने सुयोग्य चिकित्सक डा० पद्म सिंघवीका विचार इसी विचार धारापर पढ़ा। उन्होंने अपने गम्भीर चिन्तन और अनुभवोंसे लोकहितकी बात अत्यन्त सरलतासे कही है। आजके इस तनाव भरे वातावरणमें स्वस्थ रहनेके लिए यह आवश्यक है कि हम अपनेको तनावों एवं कुण्ठाओंसे मुक्त रखें और रंचमात्र भी विकार आनेपर मनकी विकृति छिपाएँ नहीं। कारण छिपानेसे कुण्ठा और कुण्ठासे तनाव पैदा होता है। तनाव ही दिलकी बीमारीका पहला सशक्त कारण है। आज ऐसी विचारधाराके प्रचार एवं प्रसारकी अत्यन्त आवश्यकता है। हमारे संतुलित स्वास्थ्यका रहस्य हमारा संतुलित मन ही है।

मानसिक व शारीरिक प्रक्रियाओंको अलग-अलग मानना भूल है। जैसे हाथ पाँव शरीरके अभिन्न अंग हैं, उसी तरह दिमाग भी बहुत महत्त्वपूर्ण अंग है। काफी हद तक शारीरिक व्याधियाँ दिमागको प्रभावित करती हैं और मानसिक विकार भी शारीरिक दोषके रूपमें प्रकट होते हैं। जैसे खुशीमें दिलकी धड़कन बढ़ जाती है, परेशानी हो तो पसीना आता है, उत्तेजित हों तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। डरे हुए व्यक्तिकी धड़कन बढ़नेके साथ उसका मुँह भी सूख जाता है तथा पेशाबकी शिकायत हो जाती है। इसी तरह जैसे बदहजमी होनेपर कुछ भी करनेको दिल नहीं करता। दर्दसे आप चिड़चिड़े हो जाते हैं आदि आदि। इसलिए आवश्यक हो जाता है कि हम हर बीमारीको समझने व उपचार करनेसे पहले इन दोनों पहलुओंको ध्यानमें रखें।

बहुत-सी ऐसी बीमारियाँ हैं, जिनमें दिमागी हालतका कोई असर नहीं पड़ता। जैसे फोड़ा हो जाना, एपेंडिक्स व अन्य संक्रामक रोग। परन्तु काफी रोग ऐसे होते हैं, जिनके विकास तथा उपचारमें रोगीकी मानसिक स्थिति काफी हदतक अपना प्रभाव डालती है। जैसे दमा, पेप्टिक अल्सर, आंत्रशोध, रक्तचापका बढ़ जाना, कुछ चर्मरोग आदि। इसलिए सिर्फ रोगका इलाज करनेकी बजाय अगर रोगीका इलाज किया जाये तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फायदा अधिक होता है।

बीमारीका मानसिक व्यक्तित्व

ऐसा समझा जाता है कि कुछ प्राकृतिक व पुश्तैनी कारणोंसे कुछ तन्तु पैदाइशी कमजोर होते हैं और यही तन्तु मानसिक तनाव बढ़नेपर रोगग्रस्त हो जाते हैं।

हर व्यक्तिका मानसिक संतुलन अलग-अलग होता है। कुछ व्यक्ति साधारण-सा दबाव भी बर्दाश्त नहीं कर पाते और कुछ असाधारण रूपसे इन उतार-चढ़ावोंको सहन कर जाते हैं। इससे एक तरहका विशेष व्यक्तित्व पैदा हो जाता है और ये लोग उन रोगोंके शिकार ज्यादा व जल्दी होते हैं। जैसे पैप्टिक अल्सर वालोंका व्यक्तित्व कोरोनरी धमनी रोग जैसे दिलके दौरेवाले मरीजोंके व्यक्तित्वसे भिन्न होता है।

आवेसे भी अधिक त्वचा रोगोंके पीछे मानसिक स्थितिका स्पष्ट प्रभाव देखा गया है। भावनाओंके हेर-फेर चमड़ीके माध्यमसे बखूबी दिखाई पड़ते हैं। जैसे डरसे पीला पड़ना, भावुक होनेपर ललाई आना, गुस्सेमें पसीना आना आदि। ये सभी लक्षण अस्थायी होते हैं, मगर जब मानसिक अशान्ति ज्यादा व बार-बार होती है तो ये ही बीमारीका रूप धारण कर लेते हैं।

कई लोगोंको जरूरतसे ज्यादा खुजली होती है, जिसका कोई ठोस कारण नजर नहीं आता। कइयोंमें चमड़ीमें सुबहके वक्त विकार नजर आते हैं, जो रातमें ज्यादा खुजलानेकी वजहसे हो जाते हैं। यह बीमारी कभी कम व कभी ज्यादा हो जाती है व दिनमें ऐसा कई बार होता है। कइयोंमें एक खास समयपर ही लक्षण पैदा होते हैं। दवाई बदलनेसे या जगह बदलनेसे कइयोंकी बीमारी ठीक हो जाती है। इस तरहके अस्थिर लक्षणोंवाले त्वचा रोगोंमें मानसिक स्थितिको काफी महत्त्व दिया गया है। इन सबके आधारपर रोगोंकी मानसिक अवस्थाकी तहतक जानेपर रोगके निदान व समाधानमें बड़ा योग मिलता है।

कई गृहणियोंको सफाईकी सनक होती है। ये दिनमें बार-बार साबुनसे हाथ धोते रहनेकी वजह से साबुन चर्मरोगका शिकार हो जाता है। इसी तरह डामेटाइटिस आर्टीफैक्टा मानसिक विकारके कारण होते हैं, जिसमें ज्यादा खुजलानेसे दाने-से हो जाते हैं। अगर इसमें प्रभावित अंगोंको ढक दिया जाये, तो वे ठीक हो जाते हैं। इसी तरहसे बच्चोंमें ट्राइकोटिलोमोनिया, लाइकेन सिंप्लेक्स, पांफोलिक्स, यूमुलर एक्जिमा आदिमें मानसिक अशान्तिका हाथ रहता है। पसीना ज्यादा आना, खुजली, सोरिएसिस आदि इसके उदाहरण हैं।

दमा यों तो श्वास नलियोंको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिकुड़नेसे हो जाता है और उसमें साँस लेनेमें तकलीफ होती है, मगर इसमें भी दिमागी हालतका गहरा असर पड़ता है। यह रोग पैत्रिक होता है। प्रयोगशालामें रोगीके रोगके बारेमें जांच करनेसे पता चलता है कि कई रोगियोंमें बीमारी तो कम होती है, पर लक्षण कई गुना ज्यादा होते हैं। इसी तरह कइयोंमें गम्भीर अवस्था होनेपर भी लक्षण बहुत कम प्रकट होते हैं। जिनमें ज्यादा लक्षण दिखते हैं, उनमें उनकी मानसिक स्थितिका काफी प्रभाव रहता है, जैसे बच्चे स्कूलसे छुट्टी लेनेके लिए ऐसा करते हैं या फिर लोगोंका ध्यान आकर्षित व सहानुभूति अर्जित करनेके लिए ऐसा करते हैं।

कुछ रोगी ऐसे भी होते हैं, जो दमाकी परवाह न करते हुए बहुत कम लक्षण प्रकट करते हैं। ऐसी अवस्था खतरनाक साबित हो सकती है। इन लोगोंकी बातोंको ठीक न मानते हुए इनका पूरा इलाज करना चाहिए।

इसी तरह दिलके दौरेमें भी मानसिक स्थितिका स्पष्ट प्रभाव देखा गया है। एक खास तरहके व्यक्तित्व वाले लोग, जो कि बहुत महत्त्वाकांक्षी होते हैं तथा जिनमें हर क्षण कुछ करने व आगे बढ़नेकी लगन होती है, इस बीमारीके ज्यादा शिकार होते हैं। ये लोग जरूरतसे ज्यादा जिम्मेदारियाँ सँभाले रहते हैं, जोरसे बोलनेके आदी होते हैं। गुस्सा भी ज्यादा करते हैं तथा तेज रफ्तारवाली जिंदगी बसर करते हैं। गम्भीर व आकस्मिक आघातोंसे प्रायः दिलका दौरा पड़ता है।

जब भी कोई गुस्सेमें होता है, तो उसका रक्तचाप बढ़ जाता है। लड़ाईके समय सैनिकोंमें रक्तचाप बढ़ जाना एक स्वाभाविक बात है। जब लड़ाई बन्द हो जाती है, तो इनका रक्तचाप सामान्य हो जाता है। शान्त, सुरक्षित व सुरम्य वातावरणमें रहनेवाले लोगोंको यह बीमारी ज्यादा नहीं होती। जिन लोगोंमें बार-बार या बहुत समयतक मानसिक उथल-पुथल रहती है, उनकी धमनियोंमें स्थायी विकार हो जाते हैं, जिससे कि रक्तचाप बढ़ जाता है, भावनाओं तथा रक्तचापमें एक गहरा तथा पेचीदा सम्बन्ध है।

कमजोरी, थकान, सिरदर्द आदि ऐसे सामान्य लक्षण हैं, जिनका हर व्यक्ति कभी-न-कभी शिकार होता ही है। इनकी जड़में भी दिमागी हालतका काफी प्रभाव देखा गया है।

पेप्टिक अलसरके रोगीका मानसिक स्थितिसे गहरा सम्बन्ध होता है। इसमें भी अमाशय अलसरपर दिमागी हालतका ज्यादा असर पड़ता है। कई बार असाधारण मानसिक तनावसे मरनेवाले लोगोंकी शव-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परीक्षा (पोस्टमार्टम) में अमाशयमें अनगिनत छोटे छोटे घाव पाये गये हैं। ये स्पष्टतया मानसिक कारणोंसे होते हैं। अनुसन्धानकर्ताओंने यह सिद्ध कर दिया है कि अमाशय हमारे दिमागमें होनेवाली प्रक्रियाओंका प्रतिविम्ब है। जैसे गुस्सेमें अमाशयका रक्त प्रवाह बढ़ जाता है तथा भयसे कम हो जाता है। आदि।

जिस तरह दिलके दौरेका एक खास व्यक्तित्व है, उसी तरह इस बीमारीको भी हम एक खास किस्मके लोगोंमें ही ज्यादा पाते हैं। जो लोग भावुक होते हैं, गुस्सैल व चिड़चिड़े होते हैं और जो स्वयंको वातावरणके अनुकूल बनानेमें असमर्थ होते हैं, अपने अन्दर दबाव महसूस करते हैं, उन्हें यह बीमारी ज्यादा होती है।

यह सच है कि इस बीमारीमें शल्य चिकित्साका बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है, मगर कभी-कभी आपरेशनके बाद भी लक्षण बरकरार रहते हैं। इसका कारण दिमागी परेशानियाँ होती हैं, जिनके ठीक होनेसे ये लक्षण भी अधिकांश गायब हो जाते हैं।

उत्तेजना और दौरे

दिमागका पाचन-क्रियासे उत्पन्न होनेवाले विकारोंसे अटूट सम्बन्ध है। बच्चेको अगर ठीक ढंगसे व ठीक समयपर दूध न मिले तो माँ से उसके सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं। एनोरोक्सिया, नवोसा, जिसमें भूख बिलकुल कम लगती है, माहवारी बन्द हो जाती है तथा वजन कम हो जाता है, स्पष्टतया दिमागी हालतसे सम्बन्धित है। मोटापा, जो कि सम्पन्न समाजका एक अंग बन चुका है, एक मानसिक अभिशाप है। हँसमुख, चिन्तामुक्त व शान्त व्यक्ति ज्यादातर मोटे होते हैं, खाना ज्यादा खानेके साथ-साथ ये सब बातें भी मोटापा बढ़ानेमें सहायक होती हैं। कुछ मानसिक परिस्थितियोंमें कुछ व्यक्ति अधिक खाते हैं। इसके अलावा स्वाद रुचि आदि भी ज्यादा खानेको प्रोत्साहन देते हैं।

कमरके दर्द, गठिया आदिमें भी मानसिक स्थिति काफी हद तक जिम्मेदार है। मिरगीका दौरा एक दिमागी बीमारी है। इसलिए इसमें मानसिक कारणोंका प्रभाव स्वाभाविक है। कई बार सहानुभूति प्राप्त करनेके लिए या अपनी ओर ध्यान आकर्षित करनेके लिए या किसी अवाञ्छनीय परिस्थितिसे बचनेके लिए यह बीमारी स्वतः ही पैदा हो जाती है। कई तरहकी उत्तेजनाओंसे खास किस्मके दौरे पड़ते हैं। जैसे रोशनीसे होनेवाली मिरगीमें टेलीवीजनका काफी हाथ है। इससे बच्चोंमें यह दौरा पड़ता है। इस तरहके दौरोंमें खाली दवाइयोंसे काम नहीं चलता। ऐसेमें मानसिक स्थितिको सुधारना अति आवश्यक है। कई लोगोंको संगीत सुननेसे दौरा पड़ जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावनाओंका उतार-चढ़ाव, थकावट, मूडका बदलना, दिमागी काम आदि मानसिक स्थितियाँ है, जिनसे दौड़ा पड़ सकता है।

इस तरह यह एक बहुत उचित बात होगी, अगर हम रोगमें उपचारके साथ-साथ रोगीकी मानसिक स्थितिका भी अध्ययन करें और उसे संतुलित रखनेका प्रयास करें। इससे रोगीको ठीक होनेमें सहायता मिलेगी। अगर इसका ख्याल न रखा जाये, तो कई बार रोगका इलाज होनेपर भी मरीज स्वस्थ अनुभव नहीं करता।

कृष्ण-कृष्ण !

पहले मैं बड़े प्रेमसे 'कृष्ण, कृष्ण' बोला करता था। एक बार एक धर्मशालामें ठहरनेके लिए गया तो उसके चौकीदारने कहा— 'यहाँ अकेले मनुष्यको नहीं ठहराया जाता। तुम्हारे पास न तो विस्तर है, न कोई सामान। तुमको हम नहीं ठहरावेंगे।'

मैंने 'कृष्ण, कृष्ण' कहा। चौकीदार कुछ सोचकर बोला— तुम बोलते तो बहुत अच्छा हो ठहर जाओ।

उसने मुझे एक आलमारी दे दी। बरामदेमें पड़े रहनेको कह दिया। उसके बाद तो उस धर्मशालाके मैनेजर, चौकीदार जो अबतक बदलते गये हैं सब मेरे भक्त हो गये।

'कृष्ण-कृष्ण' कहनेसे सब कामना पूर्ण होती है। यह सिद्ध नाम है। महापुरुषोंने जिन नामोंको अपनाया, जिनसे उनका संकल्प जुड़ गया वह नाम सिद्ध हो गया।

—महाराज श्री

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वभावका परिवर्तन

— स्वामी श्रीशंकरानन्द जी

सदृशं चेष्टते स्वस्याः
प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि
निग्रहः किं करिष्यति ।।

गीता ३.३३

ज्ञानवान् अपनी प्रकृति अर्थात् स्वभावके अनुसार चेष्टा करता है। प्राणी प्रकृति अर्थात् स्वभावको प्राप्त होते है, अतः निग्रह क्या करेगा ?

इस श्लोकको तथा अर्थको पढ़कर साधकोंके मनमें यह शंका होना अति स्वाभाविक है कि जब ज्ञानवान् भी स्वभावके परवश होकर चेष्टा करते हैं तथा निग्रह कुछ नहीं कर पाते तो साधना द्वारा अज्ञानियोंके स्वभावका परिवर्तन कैसे होगा ? इस प्रश्नका ही उत्तर अगले श्लोकमें दिया गया है।

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे
रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छे-
त्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ।।

गीता ३.३४

इन्द्रियोंका अर्थ विषयमें राग-द्वेष व्यवस्थित है, उन राग-द्वेषके वशमें नहीं आना चाहिए। वे राग-द्वेष ही इस साधकके विघ्नकारक हैं।

इन तीनों श्लोकोंके भावार्थको स्पष्ट करते हुए आचार्योंने कहा है कि यह सत्य है कि मनुष्य प्रकृति अर्थात् स्वभावके अनुसार चेष्टा करता है किन्तु राग-द्वेष अपने सहकारीके मिलनेपर ही स्वभावके अनुसार चेष्टावान् होता है। सहकारी राग-द्वेष न होनेपर स्वभावके अनुसार चेष्टा नहीं होती। जैसे सिंह का स्वभाव हिंसा करनेका है तो भी द्वेष रूप सहकारीके न होनेके कारण तथा राग-रूप बाधक विद्यमान होनेके कारण भूखा होनेपर भी अपने बच्चेकी हिंसा नहीं करता। वैसे ही शास्त्रीय विधि निषेधके ज्ञान द्वारा सहकारी राग-द्वेष न होनेपर स्वभाव अपने अनुसार चेष्टा न करा सकेगा, इस प्रकार स्वभावका परिवर्तन किया जा सकता है।

यह तो श्लोकोंका तथा आचार्योंका भावार्थ है। अनुभवके अनुसार देखा जाय तो भी श्लोकोंका तथा आचार्योंका कथन ठीक ही मालूम देगा। क्योंकि सभी मनुष्य अपने स्वभावके अनुसार संकल्प, विचार तथा क्रिया करते हैं। यह बात जैसे सभीके अनुभवसे सिद्ध है, वैसे ही यह भी सभीके अनुभवसे सिद्ध है कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शारीरिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजकीय तथा शास्त्रीय विधि-निषेधों-के ज्ञान द्वारा सहकारी राग-द्वेषके वशमें न होकर स्वाभाविक चेष्टाओंमें विजय भी प्राप्त कर लेता है। इसी बातको नीचे शंका-समाधान द्वारा और अधिक स्पष्ट किया जाता है।

शंका—ऊपर कहे शारीरिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजकीय तथा शास्त्रीय सभी प्रकारके विधि-निषेधों का ज्ञान रहते हुए भी तथा उनके संस्कार प्रबुद्ध होकर विरोध करते रहने पर भी मनुष्य न चाहता हुआ भी बाह्य तथा आन्तरिक निषिद्ध चेष्टाएँ करता ही है। यह भी सभीके अनुभवसे सिद्धहै। अतः कैसे माना जा सकता है कि ऊपर कहे विधि-निषेधों-के ज्ञान द्वारा राग-द्वेषके वशमें न होकर स्वभाव पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

समाधान—जब कि उक्त विधि से कुछ स्थलोंमें विजय प्राप्त हो जाती है यह सभीके अनुभवसे सिद्ध है। तब यह तो नहीं कहा जा सकता कि उक्त उपायसे विजय होती ही नहीं। जैसे अति प्रबल प्रवाह होनेपर नौका नदी पार करनेका साधन नहीं होती तो भी अति प्रबल प्रवाहको छोड़कर अन्यत्र सर्वत्र नौका नदी उत्तरणका साधन होती ही है। वैसे ही अति प्रबल स्वभावको छोड़कर अन्यत्र सर्वत्र सफलता मिलती है।

शंका—आपका कथन सत्य है, तो भी यह बतायें कि अति प्रबल स्वभाव कैसे बदलेगा?

समाधान—जिन विषयोंमें स्व-भावका परिवर्तन कर सकते हैं, ऐसे स्थलोंपर पहले सफलता प्राप्त करनी चाहिए। इससे स्वभाव-परिवर्तनकी कलामें दक्षता प्राप्त हो जायेगी तथा अन्तःकरणकी शुद्धिमें वृद्धि होगी। इससे शनैः शनैः अति प्रबल स्वभावपर भी विजय प्राप्त की जा सकेगी। इसमें सच्चे हृदयसे की गयी प्रार्थना भी बहुत सहायक होती है।

शंका—कुछ आचार्योंने तो निग्रहः किं करिष्यति का अर्थ किया है कि ईश्वरका निग्रह क्या करेगा? ऐसी दशामें ईश्वर-प्रार्थना से सहयता कैसे होगी? यदि ईश्वर भी निग्रह न कर सका तो ईश्वर सर्वसमर्थ सिद्ध न होगा।

समाधान—ईश्वरका निग्रह क्या करेगा ऐसा जो आचार्योंने अर्थ किया है, उसका तात्पर्य यह नहीं है कि ईश्वर क्रमशः शनैः शनैः नियमन में भी सहायता नहीं कर सकता। उक्त वाक्यका तात्पर्य तो केवल इतना ही है कि ईश्वर भी एकदम हठपूर्वक नहीं रोकता। इससे 'ईश्वर सर्वसमर्थ सिद्ध न होगा'। यह शंका करना भी ठीक नहीं, क्योंकि अतिप्रबल स्वभावका एकदम हठपूर्वक निरोध न होनेका नियम भी ईश्वरने ही बनाया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। अतः स्वनिर्मित नियमका पालन करनेवाले ईश्वरको असमर्थ नहीं कहा जा सकता।

शंका—यदि समयपर विधि-निषेधका ज्ञान उदय ही न हो तो सफलता कैसे होगी ?

समाधान—जहाँ-जहाँ ज्ञानका उदय हो जाय, वहाँ-वहाँ सफलता प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। इसका फल यह होगा कि दूसरे समय में भी ज्ञानका उदय शीघ्र होगा तथा सफलता प्राप्तिके लिए उत्साह बढ़ेगा।

शंका—जिनको विधि-निषेधका बिल्कुल ज्ञान नहीं हैं उन्हें सफलता कैसे प्राप्त होगी ?

समाधान—मनुष्य जिस देश, कालमें उत्पन्न होता हैं उस देश-कालमें प्रचलित, शारीरिक, पारिवारिक, समाजिक; राजकीय तथा शास्त्रीय विधि-निषेध ज्ञानोंसे सर्वदा रहित हो ऐसा हो ही नहीं सकता।

शंका—विपरीत स्वभावकी प्रबलताके कारण विधि-निषेधके ज्ञानका उदय कैसे होगा ?

समाधान—कभी-कभी कुछ स्थलोंको छोड़कर प्रायः विधि-निषेध ज्ञानोंका उदय होता ही है। यह बात सबके अनुभव-सिद्ध है। अतः अनुभव-विरुद्ध होनेसे शंका बनती ही नहीं।

इसप्रकार साधकोंके हृदयमें उदय होनेवाली शंकाओंको उठाकर तथा उनका समाधान देकर विषयको स्पष्ट किया गया। तो भी विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि जैसे रोग निवृत्तिमें ओषधि-की प्रधानता होनेपर भी अचूक रामबाण ओषधिसे भी उसीके रोगकी निवृत्ति होती है जो ओषधिके सहायक पथ्यका पालन तथा अपथ्य का परित्याग करता है। वैसे ही विधि-निषेध ज्ञान द्वारा राग-द्वेषके वश में न होना ही स्वभाव-परिवर्तन में मुख्य अचूक रामबाण साधन है तो भी इससे उसीको स्वभाव परिवर्तन करने में सफ़लता मिलती है जो सात्त्विक आहार, व्यवहार, रहन-सहन, सत्संग वातावरण आदि सहायक पथ्यका पालन तथा इसके विपरीत राजस, तामस, आहार-विहार आदि बाधक अपथ्यका परित्याग करता है।

●

★

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्ण-सौन्दर्यकी प्यासी गोपियाँ

सुश्री कञ्चन खन्ना, एम. ए.

यह कन्हैया बड़ा ही नटखट है। सुबह-सुबह हो मुरलीकी मधुर तान छेड़ देता है। पहले तो जैसे-तैसे गोपीने लज्जावश स्वयंको घरसे बाहर जानेसे रोका। केवल उसके कानोंने ही कृष्णको अपना बनाया। लेकिन अब वह अपने मनोभावोंको रोक नहीं पाती ! आँखें और हृदय उन्हें अपना बनानेको आकुल है। उनकी ओर दौड़ चलती है। यमुना-तटपर पहुँचती है तो अपने प्यारेको देखती है। एकटक देखती ही रह जाती है—

पायनि नूपुर मंजु बजै कटि किंकिनि के धुन की मधुराई।
साँवरे अंग लसै पट पीत हिये हुलसै बनमाल सुहाई॥
माथे किरीट बड़े दृग चंचल मन्द हँसी मुखचन्द जुन्हाई।
जै जग मन्दिर दीपक सुन्दर श्री ब्रजदूलह देव सहाई॥

प्रियका आकर्षण कुछ साधारण नहीं होता। प्रियकी मोहिनी छवि देखकर गोपीको अपनी सुध-बुध भूल जाती है। श्रीकृष्णके रूप-रसपर इस कदर मुग्ध हो जाती है कि उसकी इच्छा घर लौटनेकी नहीं होती, वह बार-बार अपने घड़ेको भरती है और खाली कर देती है········भरती है खाली कर देती है········भरती है और फिर खाली कर देती है—

वृषभानु कुमारि मुरारि की ओर विलोचन कोरनि सों चितवै।
चलिबे को घरै न करै मन नैंक, धरै फिर केरि भरै रितवै॥

अरे······रे·········रे ! देखो, देखो !! गोपिका तो श्रीकृष्णकी छवि का आसव पीकर बेहोश और मतवाली हो गयी है। उन्हें ही जहाँ-तहाँ खोजती फिर रही है। और कहती है—

मन्द मुसक्याय लै समाय जी में ज्याय लै रे
प्याइ लै पियूष प्यासी अधर सुधा की हौं।
मेरे सुखदाई दै रे देवजू दिखाई नेकु,
ऐ रे ब्रज-भूप तेरे रूप-रस छाकी हौं॥

इतनी आत्म-विस्मृत हो गयी है कि वह जिन फूलोंको आँचलमें भरकर ले जाती रहती है वे उसके आँचलसे गिर पड़ते हैं और उसे इसकी कोई सुध नहीं रहती। अब तो यह हालत हो जाती है कि श्रीकृष्णको देखनेके बाद दूसरे किसी रूपको देखती ही नहीं। एक वही रूप एक वही छटा उसे नगरमें वनमें सर्वत्र घूमती दिखाई देती है और उसकी आँखोंकी जो दशा होती है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसका तो कहना ही क्या, वे तो रूप-तन्मय हो जाती हैं। रूपके आश्लेष से उसकी आँखें निकल ही नहीं पातीं—

देव न देखति हौं दुति दूसरी देखे हैं जा दिन तें ब्रजभूप मैं।
पूरि रही री वहै पुर कानन आनन ध्यानन ओप अनूप मैं॥
ये अँखियाँ सखियाँ हैं हमारी सो जाइ मिलीं जलबूँद ज्यौं कूप मैं।
कोटि करौ नहिं पाइयै केहूँ समाइ गयीं ब्रजराज के रूप में॥

और रूप-छविकी धारा में धँसकर तो वे मधुमयी हो जाती हैं—

धारमें धाय धंसी निरधार ह्वै जाय फँसी उकसी न अँधेरी।
री अंगराइ गिरीं गहिरी गहि फेरे फिरी न घिरी नहिं घेरी॥
देव कछू अपनो बस ना रस लालच लाल चितै भईं चेरी।
बेगि हो बूड़ि गईं पँखियाँ अखियाँ मधु की मखिया भईं मेरी॥

अब तो यह दशा हो गयी है कि अपने प्रियको गोपी एक क्षण के लिए भी आँखोंसे दूर नहीं होने देना चाहती। अब तो उसकी बस यही—केवल एक ही अभिलाषा है कि सदा प्रिय के उस लुभावने रूपको ही निहारती जाय। इसीलिए साँवरे लालके श्यामल रूपको आँखोंमें काजलकी तरह बसा लेती है—

देव मैं सीस बसायो सनेह सों भाल मृगम्मद बिंदु कै भाख्यौ।
कंचुकी मैं चुपर्‍यो करि चोवा लगाय लियौ उर कै अभिलाख्यौ॥
लै मखतूल गुहे गहने रस मूरतिवंत सिंगार कै चाख्यौ।
साँवरे लाल को साँवरौ रूप मैं नैननि को कजरा करि राख्यौ॥

धन्य है श्रीकृष्ण के साँवरे रूपमें मग्न गोपिका।

●

एक गुरुके पास दो शिष्य थे। एकका काम रोटी बनाना था और दूसरेका काम जल पिलाना। एक दिन गुरुजीको प्यास लगी। पानी पिलानेवाला शिष्य कहीं गया था। रोटी बनानेवालेसे जल माँगा तो बोला—'यह मेरा काम नहीं।' इसे सेवाका बँधा जड़भूत रूप कहते हैं। इसमें सेवा मुख्य नहीं है, सेवाका रूप मुख्य है। इस रूपको तोड़ना होगा। यह प्रथम रूपभंग हुआ। सेवाके रूपमें आग्रह कर्ममें जड़ता है।

हम सेवा करेंगे —जब जो सेवा प्रभु लेना चाहेंगे वह सेवा करेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Bhakti Yoga

Jasvanti Dave

Head, Sanskrit Dept.

S N. D. T. COLLEGE FOR WOMEN

Bombay-1

PREFACE

In the last verse of the eleventh [1]chapter of Shreemad Bhagavad Geeta the Lord has given a Sutra (a brief statement) regarding Devotion. The exposition of the same Sutra has been given in the twelth chapter. Five things have been stated in this verse. Out of these, three are in connection with the Lord (i) मत्कर्मकृत् (ii) मत्परमः (iii) मद्भक्तः and the remaining two are with reference to the world.

(i) सङ्गवर्जितः and (ii) निर्वैरः सर्वभूतेषु

The Lord has shown in this verse 'who is entitled to attain him ?' Who can reach his abode ?

(i) मत्कर्मकृत् that is मदर्थकर्मकृत्. A person who performs action for the sake of the Lord. For whom a person does work that is to be taken into consideration. Is it for the sake of his son ? for wife ? for wealth ? Or is it done in order to make oneself happy ? An action is performed with the combination of body mind and the sense-organs. For example take the action of sweeping. Why for this particular act is undertaken ? Is it bacause by doing this the person will get money and he will be able to go to a picture ? Or will be able to buy something with the money for his wife or children ? Or else does he want to be proud of that money ? There are many people who do not spend money to buy comforts either for themselves or for their families. They deposit the money in banks and feel proud that they have got so much money. Persons indulging into such acts are worldly people. A devotee undertakes action for the sake of God. He sweeps the house and even this action is meant for God. God is there

---

१. मत्कर्मकृन्मत्परमः मद्भक्तः संगवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभुतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥ ११/५५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

in any and every form. If he happens to come here in the disguise of any form his feet should not be soiled with dust or get injured with thorns and pebbles. The devotee cleans the floor, so that the Lord has not to place his feet in a dirty place.This is what is known as desireless action (निष्काम कर्म)

(२) 'मत्परमः' Another thing is 'whom do you consider to be the greatest, and on whom do you rely ? One should have faith in God and should consider him to be the greatest entity. Whether it is wealth or wife, you can never depend on them. You cannot consider either of them to be the greatest. In case of sickness, you spend money lavishly in order to protect your body and remove the misery. In times of danger to one's own life a person runs away abondoning one's own wife and children Thus you can see what you have considered to be the greatest thing in your life. What is preyer ? It is a desire to obtain the super-most thing in life. He is a devotee who considers God alone to be the highest and the greatest,

(3) मद्भक्तः Whom dc you love ? A devotee loves only God. A person who loves his wife, children, wealth, fame and his own self is a worldly person.

All these three things uptill now have been said with reference to the God. Following two things are in connection with the world

(i) संगवर्जितः Do not have any attachment for anything. If you will have attachment for anything or any person of the world, you will get entangled,

(ii) निर्वैरः सर्वभूतेषु Be non-inimical towards all the beings of the world. There is a kind of tree known as the Jujube tree. The wood of this tree gives more heat than that of any other tree. So when there is extreme cold people burn the wood of the Jujube tree and try to remove the cold. In order to remove cold, you may kindle the fire of the jujube wood (बेर) but if you burn the fire of animosity (वैर) in the heart your heart will burn. So do not entertain the feelings of attachment and hatred.

This world is illusory. Illusory i.e. belonging to maya

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(illusion) (Mayika =Maika i.e father's house). Just as the parent's house in the case of a girl. The girl may come to her faiher's house but her rightful place is her husband's house. Similarly the rightful place of the individual soul is the Supreme being. So have that firm decision in your mind that he alone is your destination.

Clad in which clothes will you go there ? The Saints have often discussed the matter of Sari in their speeches. The fect is that the inner tendency of people is feminine by nature. Whether a person is a learned man or a Yogi, a fool or a Scholar, the internal tendency of all of them is feminine. Just as a creeper depends on a tree or woman depends on husband, the inner tendency depends on the soul So the question arises having put on which clothes, wrapped in which Sari this tendeney should go to meet the Highest Being ? This very point has been discuss d in the verse in question. The mind should be full of love. This is indicated by the expression मद्भक्तः. One should have faith in God and there should be a firm conviction that God is the Greatest. This is shown by the word मत्परमः and the body should undertake actions only for the sake of God, this is suggested by the word मत्कर्मकृत्. This particular principle of devotion is expounded in the twelth chapter.

The number twelve has a special importance in the Science of devotion. The twelth lunar day is called harivasar (the day of the Lord). The Vaisnavas observe the vow of ekadasi only because of the importance of the twelth day. There is a mantra of twelve letters and there are twelve chapters in the Shreemad Bhagavad Purana The Aditya form of Narayana is twelve-fold and there too the twelth Aditya is Vamana. The Lord first manifests in the form of Vamana only, at the place of Aditi. Having taken land measuring three steps from the Lord of the demon viz Bali he becomes Trivikrama (one who has taken three strides) and aftersending Bali to rasatala (nether world) he abandons the form of Trivikrama. This story is meaningful, even with reference to the life of a Sadhaka (an aspirant). The Lord first comes

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

to your mind assuming the tiny form of Vamana. In the beginning he does not talk, laugh, play, eat or drink. You make him do all these by means of your love and emotions. Then he will become Trivikrama and will pervade all the three states viz. th e waking, the dreaming and the state of sound sleep. He will overcome all the three qualities viz. The Sattva, the rajas and the tamas. There after having abandoned this trivikrama form he will remain in the fourth i.e. the absolute form.

Thus the number 12 has got a special significance in the science of devotion and according to this particular tradition only, the twelth chapter of the Bhagavad Geeta is appropriately chosen for the exposition of the 'Bhakti-Yoga'.

In the eleventh chapter there is the description of all the three form of the Lord. The first virat form which was shown by the Lord to Arjuna. This was the form which was not directly perceived. The Lord endowed Arjuna with a divine vision and made him visualise this form.

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥
११–८

The Lord Krishna resided in Dwarika usually in his four-armed form. In the tenthchapter of Shreemad Bhagavatin connection with the pisode of Rukmini Parihasa it is said that when Rukmini became unconscious, the four-armed Krishna lifted her up. तामुत्थाप्य-चतुर्भुजः paundraka Vasudeva (Pseudo Vasudeva) imitating Lord Krishna used to have two artificial arms stuck to his body. If Krishna were not four-armed he would not have been required to do that. Even during the Krishna's fight with Paundraka Vasudeva, Krishna is described as four-armed one. In the Mahabharata war Lord Krishna used to occupy the seat of the charioteer in Arjuna's chariot with the four-armed form. This is the reason why while eulogising the Lord in the eleventh chapter Arjuna says—

तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते
११–४६

on thousand-armed omni-formed one ! Please assume that

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

very four-armed form of yours with which you had occupied my chariot. So the four-armed form was always present before Arjuna. He was very much perturbed to see the virat form and in order to console him, the merciful Lord Krishna manifested his two-armed form. Out of these three Saguna forms described in the eleventh chapter devotion to which form has been laid down in the twelth chapter of Geeta This question has been raised by the commentators and they have given three types of interpretations of the twelth chapter.

Ancient commentators like Shree Shankeracharya and others are of the opinion that the twelth chapter prescribes devotion towards the virat form i.e. the universal form because the Lord having addressed Arjuna

'दिव्यं ददामि ते चक्षूः पश्य मे योगमैश्वरम्'

with these words and having endowed him with a divine vision made him visualise this particular form. Some other commentators like Shree Ramanuja charya and others opine that this chapter (12th) recommends the devotion towards the four-armed Narayana form. Arjuna was very much upset with fear after seeing the virat form. So devotion for that form could not have been prescribed for him. Arjuna himself had prayed

तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते

So devotion for the form which was menifested as a result of the devotee's request is expounded in the next chapter.

The opinion of yet another class of commentators who happen to be the devotees of Lord Krishna is altogether different from the abovementioned ones. They say that the twelth chapter gives an exposition of devotion of that particular two-armed human form which was manifested by the Lord himself out of mercy in order to console Arjuna fully.

122/97

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

FLATTER YOUR FEMININITY
WITH

KHATAU VOILES

IN

A Refreshingly Original Array

of

DESIGNS

The Khatau Makanji Spg.
&
Wvg. Co. Ltd.

LAXMI BUILDING
6–SHOORJI VALLABHDAS MARG

FORT : BOMBAY–400 038

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

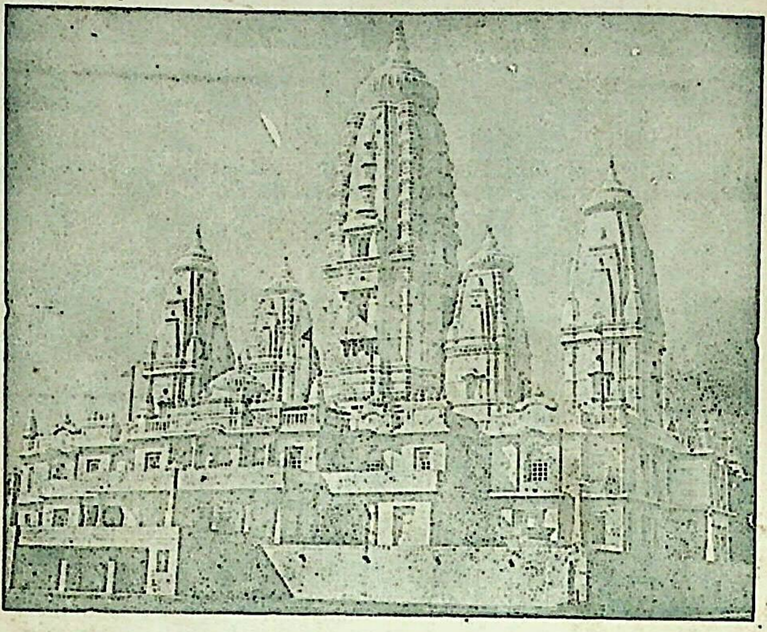

हर कार्य में ईश्वर का ही स्मरण करो

कुछ ऐसे हैं जो ईश्वरोपासना में विश्व को भुला देते हैं, कुछ ऐसे दुनियादार हैं जो ईश्वर को ही भूल जाते हैं पर जे०के० में हम हर काम में ईश्वर का स्मरण करते हैं और यही हमारी सफलता की कुन्जी है।

"कर्म ही पूजा है"—जैसे तथ्य को चरितार्थ करने के लिए हमने अच्छा वातावरण ही उत्पन्न नहीं किया अपितु ऐसे पुण्य स्थलों का निर्माण तथा सामाजिक एवं धार्मिक संगठनों का गठन भी किया है।

इस प्रकार हमने आध्यात्मिक, नैतिक एवं बन्धुत्व की भावना को लिये हुये जीने की कला सीखने में योगदान किया है।

जे.के. ऑरगनाइज़ेशन

राष्ट्रीय दक्षता एवं व्यवसायिकता का सामंजस्य

सत्साहित्य-प्रकाशनट्रस्ट, बम्बईके लिए विश्वम्भरनाथ द्विवेदी द्वारा सम्पा[दित]
एवं प्रकाशित तथा आनन्दकानन प्रेस, सीके. ३६/२० वाराणसीसे मुद्रि[त]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi